

DUE DATE SLIP**GOVT. COLLEGE, LIBRARY****KOTA (Raj)**

Students can retain library books only for two weeks at the most.

BORROWER'S No	DUE DATE	SIGNATURE

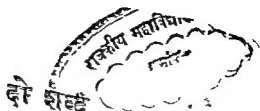
समर्पित

माया

की

कृष्णकान्त त्रिपाठी

श्रीय महाभारत कोटा
समांश
मुद्रांकित



अगठ मे, मैं साहित्य निकेतन कानपुर के अध्यक्ष सहज
 यामनारायण कपूर का हृदय से धन्यवाद दूंगा, जिनके स्नेह के ~~वर्ण~~
 स्तुत कृति पाठकों के हाथ में पहुँच सकेंगी ।

कृष्णकान्त त्रिपाठी
 सनातनधर्म कालेज
 कानपुर

रावली, १९६३

अनुक्रम

प्रथम अध्याय

१. संस्कृत साहित्य में भवभूति, २. संस्कृत साहित्य में नाटक का स्थान, ३. साहित्य में रूपकों की उत्पत्ति
४. लौकिक संस्कृत साहित्य में नाट्य परम्परा और भवभूति पृष्ठ १-१९

द्वितीय अध्याय

५. भवभूति का जीवन और समय, भवभूति की कृतियाँ और उनका समय-क्रम पृष्ठ १७-४८

तृतीय अध्याय

६. भवभूति द्वारा प्रयुक्त पदसंग्रह— महाबीरचरित और उत्तररामचरित, उत्तररामचरित और मालतीमाधव पृष्ठ ४९-५६

चतुर्थ अध्याय

७. भवभूति की कथा वस्तु के स्रोत और रामकथा— रामायण, महाभारत तथा पुराण और भवभूति के नाटक, पद्मपुराण और रामकथानक, पद्मपुराण और भवभूति के कथानक में अन्तर, रामकथा समीक्षा, रामायण में इतिहास और कल्पना का योग, महाकाव्यों के उपरान्त रामकथा के विविध रूप, रामकथा का सुशरा हिन्दू रूप, भास, कालिदास और बृहत्कथा भवभूति की वस्तु के स्रोत पृष्ठ ५७-७७

पंचम अध्याय

८ भवभूति के नाटको का शास्त्रीय विवचन, महावीर चरित—कथासार, नाम, वस्तु और पात्र समीक्षा, रामायण और महावीरचरित व कथानक में अन्तर, सविधान की दृष्टि से वस्तु समीक्षा, महावीरचरित के गुण । उत्तररामचरित—कथासार, पात्र परिचय, परिवर्तित और परिवर्धित कथानक, कथानक का विकास, कथा सविधान का कलात्मक वैशिष्ट्य, उत्तररामचरित के कुछ अन्य गुण, उत्तरक दोष, भवभूति की शैली, भवभूति का प्रकृति चित्रण, बाह्य प्रकृति का चित्रण, भवभूति का प्रणय चित्रण उत्तर में प्रयुक्त छन्द और अलंकार

पृष्ठ ७८-१४३

उत्तर भाधुरी

पृष्ठ १४४-१६३

परिशिष्ट

(अ) भवभूति स्तुति पद्यावलि

(ब) भवभूति के नाम पर मगध ग्रंथों में उद्धृत पद्य

(स) सहायक ग्रन्थ सूची

पृष्ठ १६४-१६८

प्रथम अध्याय—

यद्योयकार्मथ्यकटाक्षलेशं लब्ध्वा हसन्तीव जना सुरेशम् ।
अघातिघातिप्रथमप्रवेशं तं कामदशं शरणं प्रजाम् ॥

१ सस्कृत साहित्य मे भवभूति —

सस्कृत भाषा और साहित्य हमारे आम देश की वह सम्पदा है, जिसके बल पर हम सत्तार की समस्त सम्पदा जातियों के समक्ष उत्तम मस्तक होकर खड़े हो सकते हैं। जिस सस्कृत साहित्य के शाश्वत ग्रन्थ-रत्न वेद ग्राम्य जाति के इतिहास में प्राप्त प्राचीनतम लेख हैं,^१ वे आम जाति के वैभव के ज्वलन्त स्मारक हैं, इसमें दो मत नहीं हो सकते। महाकवि गेटे जिस समय सस्कृत साहित्य की एक कृति गङ्गुस्तला को पढ़ते हैं, हृदय विह्वल हो नृत्य करने लगते हैं। महाम् विचारक शापेन-हावर जब इस सस्कृत साहित्य के रत्नों (उपनिषदों) के जगमगाते प्रकाश से अपने हृदय को आलोकित पाते हैं, तब दृढ़ विद्वान्त के साथ कह उठते हैं कि ये मुझे मृत्यु के परवात् भी शान्ति देंगे। डा० मैक्समूलर और डा० मैक्समूलर जिस साहित्य के निर्माताओं के प्रति विनम्र श्रद्धा-जलिया समर्पित करते हुए श्रमित नहीं होते और अपने को भाग्यवान् कहते हैं, उसी साहित्य के विषय में—उसी सुरभारती के विषय में—जिसे ग्राम्य श्रद्धा के कारण देवभाषा कहते थे, हम यहाँ विचार करने की घृष्टता अपनी मन्दमति के बल पर करने बैठे हैं।

१ जे० ए० १९१०-१२, १८४ पृ०

ईसा से सैकड़ों वर्ष पूर्व जब कि आर्य यूरोप से ईरान, एशिया म
और उत्तरी पश्चिमी भारत आवासित था, उस समय की प्राची
भाषा हमारी भारतीय और ईरानी भाषाओं की मूलमाता
आर्य भाषा का प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद है, जो मूल प्रायः भाषा
अत्यधिक निकट का है। यह ग्रन्थ वैदिक संस्कृत में है जिसे छन्द
कहते थे। ऋग्वेद की संस्कृत से लौकिक संस्कृत तक, विकास के
बिन्दु दुबला और स्पष्टता के साथ दिखाये जा सकते हैं। वेद
संस्कृत का नियम शीघ्रित्य लौकिक संस्कृत में कठोर और व्यवस्थित
गया है।

विकास की प्रगति, परंपरा और व्याकरण के नियमों से बढ़
पर भी नैसर्गिक रही है। जिसके परिणाम स्वरूप संस्कृत भाषा
भारत के प्राचीन दक्षिणी और पूर्वी भागों के निवासियों के सम
में, प्राचीन के आने से, उनकी भाषाओं का प्रभाव बहुत दूर
पड़ा है।

इस उमर में मुषर्त में जो सैकड़ों वर्षों तक चलती रही, कुछ प्र
सृष्टि पथ में बिछड़ गये और कुछ नए भाषा मिल गये। क्योंकि भा
और साहित्य लेखन सामग्री के प्रभाव में मौलिक स्मरणों पर
आधित थे। विदेशी भाषाओं ने भी सुरमावती के चरणों पर सु
भेटे-शब्दों के रूप में समाविष्ट की। किन्तु प्रचंड व्याकरणों के प्र
के कारण यह व्यापार सुगम ही रहा। प्रो० स्पूडर के अनुसार पाणि
(५०० ई० पू०) ने निरंतर के समान नैसर्गिक प्रगतिशील संस्कृत भा
को नियमों से बढ़ कर लौकिक रूप में संकुचित कर दिया।

लेखन कला, अभिव्यक्तियों प्रणाली और प्रगति की पद्धति के
रूप परिवर्तित होने रहे हैं। लौकिक संस्कृत के प्रथम प्रभाव पूर्ण प्र

१. ४ पीटर्सम्—जे० ए० घा० एस० ३२, ४१४-२८५०

का स्मारकस्तेन बाल्मीकि रामायण है, जो विश्व साहित्य की धमर निधि है। हम महाकवि को प्रादि कवि के रूप में सदैव श्रद्धा समर्पित करते रहे हैं। डा० कीथ इनका समय ४०० ई० पूर्व कहते हैं।^१ डा० हार्नेत और ग्रियार्सन को यह भ्रम हो गया था, कि पाणिनि की भाषा वैदिक भाषा के उत्तर कालीन युग की भाषा की छाया थी, और बाल्मीकि सस्कृत तो पाली के विरोध में कृत्रिम उपज है।^२ किन्तु यह भ्रम अब किसी को नहीं है।

—संस्कृत, ज्ञान-विज्ञान दोनों की भाषा रही है। सस्कृत भाषा के विकास में ब्राह्मणों का बड़ा हाथ रहा है, जिसके कारण पाश्चात्य आलोचक इस भाषा को ब्राह्मणधर्म और ब्राह्मण संस्कृति की भाषा कह देते हैं। यह उनके ज्ञान की कमी है। बौद्ध और जैन संस्कृत साहित्य पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। हाँ, सस्कृत भाषा और साहित्य की समृद्धि का श्रेय कुछ दूर तक ब्राह्मणों को उनके अथक परिश्रम और त्याग को दिया जा सकता है।

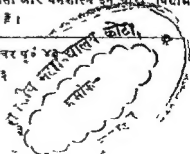
साहित्य, शब्द और अर्थ के मञ्जुल सामञ्जस्य का नाम “साहित्य” भावः साहित्यम्” व्युत्पत्ति भी यही बात करती है। महाकवि और महान् वैद्याकरण भर्तृहरि ने “साहित्य संगीत कला विहीनः” में साहित्य शब्द का प्रयोग—शब्द और अर्थ के अनुरूप समिवेश वाले काव्यों के अभिप्राय में किया है। कविराज राजशेखर भी—“पंचमी साहित्य विद्येति यायावरोचः साहित्यतृणां विद्यानामपि तिष्यन्दः।”^३

अर्थात् पुराण, न्याय, मीमांसा और परमशास्त्र इन चारों विद्याओं का सार साहित्य विद्याको कहते हैं।

१ हिस्ट्री आफ सस्कृत लिटरेचर पृ० ४२

२ बिहारी डिक्शनरी पृ० ३३

३ काव्य मीमांसा पृ० ४



२ साहित्य में नाट्य का स्थान :—

नाट्य शब्द जो रूपक का वाची है, सर्वप्रथम भरत के नाट्य शास्त्र में शीर्ष स्थान प्राप्त करता है। भरत नाट्य शास्त्र को कलाओं का 'विश्वकोष' कहा जाता है। लिखित कलाओं में काव्य कला और विद्याओं में साहित्य विद्या अन्यतम पदभात्री हैं। अज्ञान द सहोदर रसानुभूति काव्य के सरस, सरल और सहज माध्यम से ही सर्वदा होती रही है। काव्य के अनिवार्य मान्यता की सत्ता सभी पाश्चात्य और पौराण्य विद्वान् स्वीकार करते हैं। प्राचीन युग के ऋषि 'रसार्थे स' जिस रस की उपमा ब्रह्म से देते थे, उस साहित्यिक जगत् के मनोवैज्ञानिक रूप वाले रस की अनुभूति प्राचीन साहित्यशास्त्री— जिसकी अनुभूति परंपरा आचार्य भरत ने; विभावानुभाव व्यभिचारि तयोगाद् रस निष्पत्ति' से व्यक्त की है—दृश्य काव्य तक ही सीमित मानते थे। एक युग था, जब कि अलंकार अन्य काव्य को और रस दृश्य काव्य की आत्मा माने जाते थे। समय के साथ-से रस की सत्ता का साम्राज्य काव्य जगत् के प्रत्येक क्षेत्र में हो गया और आज काव्य की आत्मा के रूप में रस सिद्धांत सभी को स्वीकार है।

वस्तुतः, रस की सहज अनुभूति जितनी दृश्य काव्य के घर की वस्तु है, उतनी अन्य काव्य के नहीं। यही कारण है, जिससे काव्य जगत् में नाटक की सर्व ध्येय स्थान दिया गया है।

कवि बिहणन ने अपने 'विजयानन्द देव चरित' में काव्य रूपी अमृत की साहित्य समुद्र के मन्यन से उत्पन्न होने वाला कहा है :—

"साहित्य पायो निधिमन्यनोत्थं काव्यामृतं रसत हे कवीन्द्राः।"

साहित्य में काव्य और काव्य में नाटक की मनोज्ञता की दृष्टि से परम पद प्राचीन सहृदयों ने प्रदान कर दिया था—

"काव्येषु नाटकं रम्यम्।"

संस्कृत साहित्य ने तो यथार्थतः अपने "शाकुन्तलम्" ऐसे उच्चकोटि के नाटक के बल पर ही विश्व में स्थाति प्राप्त की है। जैसे गीताजि के बल रवीन्द्र ने। काव्य में नाटक की प्रतिष्ठा सर्वोच्च सभी को सदा स्वीकृत रही है। महाकवि कालिदास का भी कहना है :—

"त्रैगुणयोद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते
नाट्यं भिन्न रुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम् ॥"†

काव्य के श्रवण की अपेक्षा रसमय का आकर्षण अधिक होता ही है। काव्य के आनन्द की अनुभूति में मनुष्य भी नाटक के मनोज्ञ बर्णन को देखकर रसवित्त हो जाते हैं। आचार्य जामिनी का कहना है :—

"सन्मर्षेषु रूपकं श्रेयः। तद्विचित्रं
चित्रपटवत् विशेष साकल्यात् ॥"

लोकवृत्त का अनुकरण नाटक होता है। आचार्य भरत ने अपने नाट्यवेद को सार्वत्रिक कहा है। इसमें तीनों लोकों के भावों का अनुकीर्तन रहता है।

"त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम्।

नानाभावोपसम्पन्नं नानावस्थान्तरात्मकम् ॥

लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मयाकृतम् ॥"

आगे आचार्य भरत कहते हैं :—

"न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला—

न म योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यत्र दृश्यते ॥"

ऐसा कोई ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग और कर्म नहीं है, जो इस नाट्य में न दिखाई देता हो।

† मालविकाग्निमित्र १/४

१-नाट्यालंकार सूत्र १/३/३६-३१

२-नाट्यशास्त्र १/१०५-९

३-नाट्यशास्त्र १/११४

इस उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट ही हो चुका है, कि नाटक में गद्य और पद्य दोनों का आनन्द प्राप्त हो जाता है। विरव के प्रत्येक साहित्य में नाटको को सर्वोच्च सम्मान प्राप्त है। रोमनसियर अपने नाटको के ही कारण प्राग्ग साहित्य में मूर्धन्य हैं। अन्त में हम प्राचीन आलकारिकों की उक्ति को उद्धृत करने का सोम नहीं सवरण कर सकते :—

‘नाटकान्तं कवित्वम्’

३ साहित्य में रूपकों की उत्पत्ति:—

किसी भी भाषा और साहित्य तथा उसके अंगों और उपागों के जन्म की निश्चित नियमों को निर्धारित कर देना सर्वद्व बहुत कठिन कार्य रहा है। क्योंकि साहित्य एक सतत प्रस्रवणशील कोत होता है। उसके वास्तविक आद्यत का दिन नहीं निर्धारित किया जा सकता है। किन्तु फिर भी, एक युग के मध्ये क्षेत्र में जन्म और समाप्ति की वास्तव रूप देखाएँ पहिचानने का प्रयत्न किया हो जाता है।

सर्वे प्रथम नाट्य शब्द प्राचार्य भरत मुनि के नाट्य शास्त्र में प्राप्त होता है। पाणिनि ने ‘पाराशर्यशितालिभ्या अक्षुनटसूत्रयो’ सूत्र में नट शब्द का प्रयोग किया है। नाट्य शब्द की व्युत्पत्ति के बारे में विद्वानों के विविध विचार हैं। रामचन्द्र गुणचन्द्र ने नाट्य शब्द की व्युत्पत्ति ‘नाट्’ धातु से मानी है। ‘नाट्य सर्वस्वदीपिका’^१ में मूल धातु ‘नट्’ स्वीकार की गई है। डा० वेवर ने नाट्य सर्वस्वदीपिका के मत को स्वीकार करते हुए भी, कुछ समोधन करते हुए कहा है कि नट धातु नृत धातु का प्राकृत रूप है। कुछ विद्वानों की धारणा है कि मूल धातु नृत ही है, उसे नट आदेश हो जाता है। विद्वान मन्कद ने अपने ‘टाइम अ फ गन्वृत ड मै’ नामक ग्रन्थ में वेवर के मत का

१—नाट्य दर्शन पृ० २८।

खण्डन करते हुए निरा है कि प्राकृत साहित्य में नाट्य-कला का नट रूप कही भी नहीं मिलता है। साधारणतः अभिनयार्थक नट घातु से नाट्य, नाटक आदि रूप बनेंगे।

नाटक की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों में विविध मत हैं। कुछ पाश्चात्य विद्वान् यूनान को नाटको का आदिम घर मानते हैं। शेष पाश्चात्य और भारतीय विद्वान् भारतवर्ष को नाटकों का आदि उद्भावक स्वीकार करते हैं। भारतीय प्राचीन परम्परानुसार नाट्यवेद की सृष्टि ब्रह्मा जी ने की थी। तथा उसका प्रचार भरत मुनि ने धरातल में किया। वैज्ञानिक अनुसन्धान पद्धति के अनुसार भी संस्कृत साहित्य में नाट्य का अस्तित्व अत्यन्त प्राचीन है और उसका आदि स्रोत भारत भूमि ही है।

रूपों की उत्पत्ति की भारतीय परम्परा—भरत मुनि प्राचीन 'नाट्य शास्त्र' नाट्यशास्त्र (ड्रामेटिक्स) के ऊपर प्राचीनतम लेख कहा जाता है।¹ इसे सावर्गिक पंचम वेद की सजा दी गई है। नाट्य-वेद में रूपों की उत्पत्ति की दैविक परंपरा का वर्णन है। भरत मुनि का कहना है कि मत्स्यगुप्त में अभिनय का स्थान तथा व्रता पुत्र में एक विषय आनन्द की आवश्यकता का अनुभव कर, सभी देवता मिलकर ब्रह्मा जी के पास गये और उनसे प्रार्थना के रूप में निवेदन किया कि किसी ऐसी वस्तु का निर्माण कीजिए जो आर्य और कर्मा दोनों को समान आनन्द प्रद हो जिससे सभी वग आनन्द ले सकें। ब्रह्मा जी ने अनुग्रह करत हुए ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गीति, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर नाट्यवेद का निर्माण कर दिया।

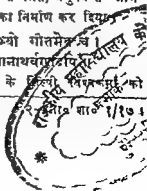
“अप्राह पाठ्यमृगवेदात् सामभ्यो गीतमेव च।

यजुर्वेदः अभिनयान्

रसानाथर्वमपि

इमं पठ्यान् ब्रह्मा जी ने देवताओं के कृपा से नाट्यशास्त्र को

१—नाट्य शास्त्र १/२।



प्रेसागृह निर्माण करने की आज्ञा दे दी। अभिनय के सबैत ब्रह्मा जी ने भरत मुनि को प्रदान कर दिए। इस नई मृष्टि से प्रसन्न देवों ने यथानुकूल—शिव ने ताण्डव नृत्य, पार्वती लक्ष्म्य नृत्य और विष्णु ने अभिनय के चार प्रकार—यागिक, नाचिक, ग्राह्य और सात्विक प्रदान किए। अप्सराओं की भी उत्पत्ति कौशिकी वृत्ति के अभिनयार्थ हुई और भरत एवं उनके पुत्र पृथ्वी लोक में अभिनय के लिए निर्वाचित हुए। क्योंकि अभिनय कला देवों के वंश की नहीं मानवों के वंश की समझी गई भरत के नाट्य शास्त्र का उल्लेख महाकाव्यों में भी पावर्षे वेद के रूप में है। सर्व प्रथम इन्द्रायज्ञ महोरस्य में अभिनय हुआ। अभिनय में देवों की दानवों पर विजय दिखाई गई।

वैदिक संवाद—नृत्य का ऋग्वेद में ग्रहण किया जाना सार्यक सिद्ध हो गया है। ऋग्वेद में कई ऐसे संवाद स्थल हैं, जिन्हें विद्वानों ने सूँव निकाला है, उन्हें हम अपने नाटकों के भूत रूप कह सकते हैं। इससे भारतीय परंपरा प्रमाणित होती है। प्रायः पन्द्रह संवाद स्थल विशेष प्रसिद्ध हैं। “प्रथम—१०/१० में यम-यमी, द्वितीय—१०/९५ पुरुषा-उर्वशी, तृतीय—८/१०० नेम-भार्गव और इन्द्र का, चतुर्थ—मगरथ, सोपामुद्रा और उनके पुत्र १/१७६, इन्द्र और वासुज ८/२८ पंचम, षष्ठ—इन्द्र, अदिति और वामदेव ४/१८, सप्तम—इन्द्र-इन्द्राणी और वृषाकपि १०/८९, अष्टम—सरमा और वणि १०/१०८, नवम—विश्वामित्र और नदिया ३/३३, दशम—वशिष्ठ और उनके पुत्र ७/३३, एकादशम—इन्द्र और भरत १/१६५” आदि।

ये सभी संवाद बड़े ही नाटकीय हैं। इन संवादों के मौलिक उद्भव और उद्देश्य ने हमें जोई स्पष्ट विचारधारा का ज्ञान नहीं

है। १८६ ९ म प्रो० मैक्समूलर ने लिखा था, कि "यह सवाह (१/१६५) मरुत के प्रति आदर में यज्ञ के अवसर पर कहा जाता था।"^१

प्रो० लेवी का भी कहना है कि "सामवेद से सिद्ध होता है कि वैदिक युग में संगीत विद्या पूर्ण रूप से विकसित थी।^२ अथर्ववेद १२/१/४१ में स्पष्ट संकेत करता है कि आदमी को कैसे नाचना, गाना और बजाना चाहिए। इससे सिद्ध होता है कि वैदिक युग में नाटक के सभी उपकरण वर्तमान थे। पुराहित लोग देव और ऋषियों का स्थान लेकर स्वर्गादि घटनाओं का पृथ्वी पर अनुकरण करते थे।^३ किन्तु प्रो० वानभ्रादर ने तर्क डग पर कहा है, कि १०/११९ के ऋग्वेदीय सवाह के अन्त पर हम कह सकते हैं कि ऋग्वेदकाल में नृत्य नहीं था।^४ हाँ ब्रह्मण्य युग में यज्ञीय शुभावसरो पर प्राकृतिक घटनाओं का अभिनय नयक वाद्ययंत्र से किया जाता था। डा० हर्टेल का कहना है कि वैदिक मूल सदा गाए जाते रहे हैं। एक व्यक्ति कई व्यक्तियों के स्थान पर गाने गा सकता है। कलत कई व्यक्ति गाना करते थे। ऋचाएँ प्रथमन, गीतगोविन्द के समान माट्यकला के क्षेत्र में प्रविष्ट हुई। त्रिसवा प्रमाण सुपर्णाध्याय है और जिनका रूप धार्मिक यात्राओं में अभिहित होता है।

किन्तु इन तथ्यों का कोई प्रामाणिक आधार नहीं है। ऋग्वेद स्तुति परक ग्रन्थ है और उसका यज्ञों में धार्मिक रूप से व्यवहार होता रहा है।

इन सवाह मूलों के उद्देश्य के बारे में प्रो० विन्डिल, डा० ओल्डेन बर्ग और डा० विगेन आदि का कहना है कि यह सवाहात्मक मूल पूर्णतः नाटकीय हैं और नाटकों में गद्य पद्य मिश्रण इनका सर्वोच्च

१—एरु० बी० ई०, ३२।

२—टी० आई० १/३०७/८९००।

४—वि० प्रो० जे० २२/२२३।

३—कीय सरवृत डामा पृ० १६

५—दि० प्रो० जे० १८/५९।

सूक्त पूर्णतः नाटकीय हैं और नाटकों में गद्य पद्य का मिश्रण इनका अर्वाचीन उदाहरण है किन्तु साहित्य में ऐसे किसी भी प्रकार के संकेत प्राप्त नहीं होते हैं जो इन तर्कों का समर्थन करें।

वैदिक यज्ञों में अभिनय—घावों के यज्ञ, वेधन गाए गए सामो और दबो के सम्मान में कहे गए स्तवों से ही पूर्ण न रहते थे, किन्तु कुछ ऐसे उत्सव सम्बन्धी क्रिया कलाएँ होती थी, जिसमें अभिनय का प्रयोग किया जाता था। "सोम यज्ञ के लिए सोम का त्रय" सोम विक्रोता और क्रोता उपरोहित के बीच यह संवाद रूप से अभिनय होता था।^१ किन्तु इसे हम अभिनय कह सकते हैं क्योंकि अभिनय वही कहा जा सकता है, जिसमें पात्र अभिनय के लिए ही किसी अग्य का रूप धारण करे और कहे-सुने, और इस क्रिया से अब दूसरे भ्रान्त्य प्राप्त करे।^२

डा० कीथ पूर्ण निश्चय के साथ कहते हैं कि यजुर्वेद काल तक नाटकों का अस्तित्व न था। वे नट शब्द को बहुत अर्वाचीन कहते हैं। उनका मत से शैल्य शब्द प्राचीन है।^३

प्रा० हितब्रान्ड और डा० कोनो का विश्वास है कि यज्ञीय नाटक अस्तित्व में थे। इनमें गीति, नृत्य और संगीत की प्रधानता होती थी। कौपीतकी ब्राह्मण इसका प्रमाण है। किन्तु वैदिक सूक्तों का धार्मिक प्रयोग प्रारम्भ में मानकर सौत्रिक उपयोग कोई भी विद्वान् मानने को तैयार नहीं है। हम यह मानने को तैयार हैं कि वेद नाटकीय तत्त्वों के मूल स्रोत हैं।

नाटकों की उत्पत्ति व विकास में महाकाव्यः—रामायण^४

१—हितब्रान्ड वेदिक भाष्य ८१/६९। २—कीथ स० ग्रामा पृ० २४

३—बी० एम० ३०/४।

४—२९/५।

५—रामायण १।५।९।७।२।६७।१५, २।१।१७, २।६९।४
२।८३।१५।

घोर महाभारत[†] के युग में इस कोमल कला की घोर विशेष विकास-मय प्रगति हुई। जिसके प्रमाण रूप में नट, नर्तक, नाटक, रंगमंच, कुशीलव आदि पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग हैं। महाभारत के शान्ति घोर अनुशासन पर्व में नाट्य के स्पष्ट संकेत हैं। प्रो० हिलेब्रान्ड महाभारत काल में नाटक के विकसित रूप की सत्ता मानते हैं।^१ अनुशासन पर्व में टीकाकार नीलकण्ठ नट और नर्तक शब्द का स्पष्ट प्रयोग बताने हैं। हरिवंश पुराण में तो रामायण पर आधारित नाटक के अभिनय का उल्लेख है। हरिश्चन्द्र ईसा की द्वितीय शती से पहिले का है। रामायण २/५७/१५ में समाज उत्तमव में नटों और नर्तकों का वर्णन मिला है। रामायण २/६९/३ में 'व्यामिश्रक' शब्द संस्कृत-प्राकृत नाटक के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। डा० कीय का कहना है कि कुश घोर लव वात्सीकि रामायण का गान करते थे, इसका प्रमाण है। इसी अनुसार होता है कि 'कुशीलव' कुश और लव व मिथुन से बना है तथा रामायण का गान अभिनय से सम्बन्धित था।^२

व्य कृष्ण और नाटकों का विकास—पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में नट सूत्र का स्पष्ट उल्लेख किया है। कात्यायन और पतञ्जलि ने इस बंध और बलि बंध नाटकों के संकेत दिए हैं जो पाणिनि रचित हैं। डा० वेबर महाभाष्य के "शौनिक, शौभिका, शौभानिका", शब्दों से नाट्य रंगमंच की विद्यमानता व्यक्त करते हैं। डा० स्पूडर्स का कहना है कि 'शौभिक' छाया चित्रों की व्याख्या करने वाले को कहते हैं। प्रो० सेबी 'शौभिक' को नटों के शिक्षक की सहा देते हैं। हमारा तात्पर्य केवल इतना है कि ई० पू० २०० के आस-पास नाटक विकास में थे।

† महाभारत १।५।१।५, १।२।१।४, १।२।५।१०,
२।१।२।३६।

१—शान्ति पर्व १२/१४०/२१।

२—सं० डूमा पृ० ३१।

३—महाभाष्य २/३५।

बसवप और बनिबन्ध से ज्ञात होता है कि नाटकों का सम्बन्ध धर्म और उत्सवों से भी घनिष्ठ था। घोसे होनिकोत्सव की तुलना 'मठ' से में करते हैं जिसमें धाया पर हरश्रमाद शास्त्री भारतीय नाटकों की उत्पत्ति, इन्द्र-योगता के उपसदय में उनके अभिनन्दनोत्सव के व्यक्त करने के रूप में हुई कहते हैं। यह इन्द्र की विजय मेघों के (राससों)-ऊपर वर्षा काल में हुई थी। इस धारणा के अनुसार धार्मिक रामनौमाघों और कृष्ण मोलाओं का भी प्रभाव नाटकों की उत्पत्ति और विकास में है। किन्तु होनिकोत्सव और वर्षा ऋतु का कोई सामञ्जस्य नहीं स्वीकार किया जा सकता है।

नाटकों की उत्पत्ति की लौकिक धारणाएँ—प्रो० हिसेगाम्ब और कानो का कहना है कि नाटकों की उत्पत्ति के विभिन्न धार्मिक कृत्यों और और उत्सवों में नहीं खोजने चाहिए। ये विकास में केवल सहायक हैं। बहुकवियों का अनुकरण करना महाकाव्यों के साथ संस्कृत नाटकों के मूल में है। किन्तु नाटकों के पहिले बहुकवियों के ऐसे अस्तित्व का कोई भी प्रमाण प्राप्त नहीं है। नाटकों में यद्यपि इसका उल्लेख है। किन्तु नाटकों में सेकड़ों वर्षों पहिले संस्कृत नाटकों का अस्तित्व था, यह सिद्ध है।

प्रो० पियेत का कहना है कि पुत्तलिका नृत्य भारत की वस्तु है। नाटकों की उत्पत्ति का मूल वे पुत्तलिका नृत्य की स्वीकार करते हैं। किन्तु पुत्तलिका नृत्य का प्रचलन जिस समय भारत में था, उसी समय समारक अन्य देशों में भी। हा, इस नृत्य की जन्मभूमि भारत अवश्य है। महाभारत तथा गुणादय की बृहत्कथा में पुत्तलिका नृत्य का उल्लेख है। बृहत्कथा ३०० ई० की है। इसके पश्चात् राजशेखर की बालरामायण में इसका उल्लेख है किन्तु हमारे भात, कानिदास, शूद्रर आदि से बहुत पहिले है।

१—हाम आफ दि पपट प्ले (सम्बन्ध)

प्रो० कोनो का छायानाटको में नाटकोत्पत्ति का सिद्धान्त अब भी इस रूप में आया है कि इन नाटको का भी हाथ में रूपको विकास में है। वयो कि छायानाट्य ई० पू० के नहीं है। कोनो का कहना है कि अशोक के चौथे शिलालेख में 'ह्य' का उल्लेख है। किन्तु रूप से नाटक और यह भी छायानाटक अर्थ लेना वह भी बौद्ध साहित्य से जहाँ उस युग में नाटक देखना हेय था-कोनो के ही वक्त की बात है। गिरोन क तक कि छाया नाटक बहुत प्राचीन हैं, मुख्य हीन हैं, क्योंकि प्राप्त छाया नाटक दूतांगद १३ वीं शती का है।

डा० रिजवे का कहना है कि सभी धर्मों में मृतात्माओं के प्रति आदर और श्रद्धा व्यक्त की जाती है। इसी तत्व के आधार पर नाटकोत्पत्ति हुई। किन्तु डा० कीच ने इसका पूर्णतः सङ्कट कर दिया है।^१

ग्रीकप्रभाव—डा० वेबर संस्कृत नाटको की उत्पत्ति और विकास में ग्रीक नाटको का प्रभाव प्रतिपादित करते हैं।^२

किन्तु यह धारणा अब समूल नष्ट हो चुकी है। भारत में यूनानियों के आने के पहिले नाटक थे, यह सिद्ध है, तथा भारतीय नाटकीय तत्व ग्रीक नाटकीय तत्वों से पूर्णतया भिन्न और स्वतंत्र हैं। डा० विण्डिश ने वेबर की बात को प्रामाण्यों से सिद्ध करने का प्रयत्न किया,^३ किन्तु कीच^४ और लेवी^५ ने इस सिद्धान्त को समूल ही नष्ट कर दिया है।

हमारे विचार से सभी विद्वान् सत्य के कुछ २ अंशों को लेकर चले हैं। वस्तुतः नाटकोत्पत्ति के मूल तत्व वैदिक साहित्य में प्राप्त हो जाते हैं और जिनका आधार स्पष्टतः धार्मिक है। तदुग्रान्त नाटको के विकास

१—जे० आर० ए० एस० १९११, १००८ २—कीच स० ड्रामा पृ० ५०

३—१८८२ की बर्लिन ओरियण्टल काँग्रेस ४—स० ड्रामा पृ० ३१

५—टी० आई० १/३५५

स विविध तत्व जो विद्वानों ने एकांगी रूप से उद्भय के ही मूल में रख दिए हैं—सहायक होते हैं। कीय आदि सभी विद्वान, हम नियम में सहमत हैं। भारत में नाटक ईसा से ६-७ शती पूर्व से यह निरुद्ध है।

४ लौकिक संस्कृत साहित्य में नाट्य परंपरा और भवभूति—

सम्राट का सबसे समृद्ध संस्कृत साहित्य विदेशी यवन शास्त्रियों के कारण जाने घन की रक्षा न कर सका। सुटेरों ने भीतर की होलियाँ-ग्रन्थरत्नों की जलाई। प्राप्ति न टक साहित्य के आधार पर हमारे आदि नाटककार आते हैं। इनके १३ नाटक म० म० महावनि शास्त्री ने प्रकाशित किए हैं। इनका समय कालिदास से पूर्व निश्चित है। कुछ विद्वान जो कालिदास को ई० पू० का स्वीकार करते हैं, आस की तीसरी या चौथी शती ई० पू० का कहते हैं, और कुछ विद्वान जो कालिदास को गुप्त कालीन मानते हैं, आस की तृतीय या चतुर्थ सती ई० का मानते हैं।

द्वितीय नाटककार जिनकी कृति समुपलब्ध है सूद्रक है। इनका मृच्छकटिक तृतीयसती ई० पू० की रचना है। विद्वान् कालिदास के शमिस या सीमित से इनकी एक रूपता करते हैं।

तृतीय प्रसिद्ध नाटककार महाकवि कालिदास हैं, जिनकी कला से संस्कृत साहित्य विश्व विभूत हो गया है। इनके बाद हर्ष-भट्टनारायण और भवभूति आदि आते हैं।

हम यहाँ पर, आस से हर्ष और हर्ष से भवभूति तक एक सुदीर्घ पथ भाव चुके हैं। जब हम पीछे मुड़कर देखते हैं तो हमें महान् आश्चर्य होता है कि कैसे सरस और सादे वैदिक स्वरों ने क्रमशः प्रगति और

विकास करते करते कलात्मक अभिनयके स्थान को प्राप्त कर लिया । यह विकास की घटना गति में धीमी और स्वाभाविक थी, जिससे इसे एक दीर्घ काल इस कार्य में व्यतीत करना पड़ा है ।

भास, कालिदास और सूत्रक सफन नैसर्गिक और जनप्रिय कलाकार थे । इसके बाद विवेकशील मानव स्वभावोंन इस आरंभ में कि इस नूतनभंग्य और रस्य कला को वर्गीकृत करके नियमबद्ध कर व्यवस्थित कर दिया जाय । यह १ वीं और ६ वीं शती की बात है जब कि नाटक के क्षेत्र में नियमबद्धता और वर्गीकरण की प्रवृत्ति का मूल फल हर्षवर्धन और भट्टनारायण के रूपक हुए, जिन्हें हम हिंदू नाट्यशास्त्र (ड्रामेटिक्स) के उदाहरणों के लिए विख्यात पाते हैं ।

महान् लेखक हमारे महान् श्रमों के मनुष्य प्रातः कालीन मरीचिमांसी की भांति उदय होते हैं । वे नई प्रेरणा और नये विचार लाते हैं । अनीत के अन्धकार को नष्ट कर उसके बीच से भविष्य के मार्ग का निर्माण करते हैं और एक लम्बी छाँव छोड़ जाते हैं । महान् कलाकार कालिदास की छाँव एक बड़े युग तक रही और सभी लेखक उनसे प्रभावित होते रहे हैं । किन्तु ६१०-६२४ ई० में हर्षवर्धन ने नाट्यकला में एक नई परंपरा का अधिगणेश कर दिया । जिसके उदाहरण-रत्नावली, प्रियदर्शिका और नागानन्द हैं । “हर्षवर्धन के साथ सबसे बड़ी समस्या थी कि वह नैसर्गिक नाटककार न थे । वे नाट्य नियमों के महान् ज्ञाता थे ।” जिस परिलक्ष्य में अत्यन्त शक्ति और दृष्टि थी । उनकी कृतियोग्यता नाटकीय नियम नियम के कसने के लिए ही रही गई है ।

हमने देखा कि हर्ष ने भाषा और कला को नाट्यशास्त्र के नियमों

के आधीन कर अपनी रचनाएं की हैं और ठ है एक विशिष्ट स्तर पर स्थापित किया है। नाट्य रचना कवि वर्म के रूप में दिखावे की वस्तु हो गई है। हर्ष ने एक सफल नाटक के लिए चार आर्पणित स्तर निरदिष्ट किए हैं १— चतुरवर्ति, २— प्रशासकदर्शक, ३— कुलनरत,

४— प्रभितकथानक ।

किन्तु महाकवि भवभूति ने हर्ष को इन धारणाओं के प्रति विरोध किया। भवभूति का कहना है कि नाटककार के लिए पहले नाटककार होना आवश्यक है।^१ भवभूति ने उपयुक्त दोषों की निन्दा की है और उनका प्रति आगच्छता दिखाई है। वे शू गार की प्रेममयी कथाओं से प्रभावित महावीर चरित में आबुल हो उठते हैं।^२ भवभूति ने हर्ष की परंपरा के प्रति कथावस्तु के क्षेत्र में भी विरोध किया है। हर्ष के कथानक प्रेम प्रधान और राजसभाओं से सम्बन्धित शू गारीये। भवभूति ने आदर्श सामाजिक लोक चरित्र लिये हैं। पौराणिक कथावस्तु भी सामाजिक रूप में भोसिकता के साथ चित्रित हुई है साहित्य और जीवन एकसाथ घुल मिल गए हैं।

भवभूति के साथ मूद्राराक्षस के लेखक विशालदत्त ने भी इस नव आन्दोलन में अपने की पीछे नहीं रखा है। नाटकीय नियमों की गौणता का यह सफल आन्दोलन भी भवभूति की विशेष बात है यद्यपि रोमास के प्रेमी और अम्यासी पाठकों और दर्शकों ने भवभूति की यथोचित आदर देने में कृपणता की है— जिसकी प्रतिभिया में कवि चिढ़ जाता है,^३ फिर भी भवभूति का स्थान नाट्य परम्परा में अपना विशिष्ट महत्व सदा रखता रहा है और भविष्य में भी रखेगा।

१— मा०मा० १/१०

२— महावीर चरित १/२-२

३— मा०मा० १/८

द्वितीय अध्याय

५—भवभूति का जीवन और समय :—

जीवन—बहुत ही चमकते और स्मरणीय दिवसों का प्रभात प्रायः तुहिन कणों से छिपा रहता है। यही बान विश्व की मेधावी विशेषकर प्राचीन भारतीय साहित्यिक प्रतिभागों के बारे में चरितार्थ होती है। केवल शंख ही नहीं अपितु उनकी प्रोडावस्था के विषय में भी हम कुछ नहीं जानते हैं। भारतीय इतिहास में कही भी, कोई भी पृष्ठ नहीं प्राप्त होता है, जो उन महान् कवियों, दास्यनिकों और नाटककारों के जीवन के बारे में निश्चित सकेत दे, जिन्होंने अपनी कृतियों से भारतीय मस्तिष्क की जाज्वल्यमान शक्तियों और हृदय की सुकुमार भावनाओं की ओर विश्व को आकृष्ट करने में पर्याप्त क्षमता अर्जित की है। आज भी जिनकी प्रतिभा के आगे मानव हृदय विमुग्ध सा हो, अपनी सम्पूर्ण शक्तियों से एकाग्र होकर अद्वाञ्जलि समर्पित करने में गौरव मानता है।

साहित्य सुखा सृति भवभूति संस्कृत नाट्य साहित्य में कालिदास के बाद ही प्रथम श्रेणी के नाटककारों में द्वितीय स्थान सभी विवेचकों से प्राप्त करते रहे हैं। बहुत से आलोचक तो भवभूति को कालिदास के पश्चात् स्थान देना अनुचित समझते हैं। महाकवि भवभूति ने अपने जीवन के बारे में कही भी विशेष परिचय नहीं दिया है। उनकी कृतियों में प्रस्तावना में उनके विषय में कुछ स्पष्ट सकेत मिलते हैं। 'महावीर चरित' में भवभूति अपना परिचय देते हैं।

“अस्ति दक्षिणापथे पद्मपुरं नाम नगरम्। तत्र केचित्पौत्तिरीयाः
काश्यपाश्चरणगुरवः पद्मिपावनाः पञ्चाग्नयो घृतव्रताः सोमपीपिन

उदुम्बरा ब्रह्मादिनः प्रतिवसन्ति । तदामुप्यायणस्य तत्र भवतो वाजपेय
याजिनो महाकवे पञ्चमः सुगृहीतनाम्नो भट्टगोपालस्य पोत्रः पवित्र
कीर्तेर्नीलकण्ठस्यात्मसमवः श्रीकण्ठपदनाउद्यनो भवभूतिनाम जतुकर्णी-
पुत्रः कविमित्रघेयमस्माकमित्यत्र भवन्तो विदाडकुर्वन्तु ।”

श्रेष्ठः परमः हंमानां महर्षीणामिवाङ्गिराः ।

यथार्थनामा भगवान् यस्य ज्ञाननिधिर्गुरुः ॥

“दक्षिणा पथ मे पद्मपुर नामक एक नगर है । वहा पर कुछ
उदुम्बर उपाधिवाले (सरनेम) ब्राह्मण रहते हैं । उनके वंश की परंपरा
कश्यप ऋषि से प्रादुर्भूत हुई है । वे कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के
अनुयायी हैं और पूर्णतः श्रोत्रिय तथा सोमयज्ञ करने वाले हैं । वे
लोग पवित्र धार्मिक गृहस्थ थे, अपनी जाति और जनसाधारण सभी
से सम्मानित थे, तथा पञ्चानि मुरलित रखते थे । वाजपेय यज्ञों के
प्रसिद्ध धार्मिक उदुम्बरों के इस परिवार में महाकवि नामक एक पुरुष
हुए । जिनकी पाखवों पीढ़ी में हमारे नाटककार पैदा हुए । भट्टगोपाल
नामक महापुरुष भवभूति के पितामह और स्मरणशक्ति के धनी नील-
कण्ठ उनके पिता थे । भवभूति की माता का नाम जतुकर्णी था ।
भवभूति का उपनाम कण्ठ था । वे^१ व्याकरण मीमांसा मलकार और
म्याय के ज्ञाता थे तथा वेदों, उपनिषदों, पुराणों, सांख्य, योग और
बौद्धदर्शनों का उन्होंने गम्भीर अध्ययन किया था । उनके गुरु का नाम
ज्ञाननिधि था, जो एक पहुँचे हुए योगी थे । उन्हें अगिरा के समान कहा
जाता था और साधुओं के मध्य में उनकी गणना सर्वप्रथम होती थी ।
भवभूति का नटों के साथ अच्छा सम्बन्ध था ।”

इतना वर्णन भवभूति कृत भाटको की प्रस्तावनाओं से उनके जीवन
के विषय में प्राप्त होता है । ग्रन्थों के आधार पर अनुमान किया जाता

१ भवभूति एण्ड दि वेद : कीथ

२ “पद वाक्य प्रमाणज्ञः”—उत्तर रामचरित प्रस्तावना

है कि 'मालती माधव' के नायक की भाँति भवभूति भी अपने युवक जीवन के प्रारम्भ में बरार का छोड़कर उज्जैन या पदमावती में आ गये थे। जहाँ पर उन्होंने अपने गुरु ज्ञाननिधि के शिष्यत्व में अपना अध्ययन पूरा किया। भवभूति न केवल शास्त्र-ज्ञान-वैविध्य ही नहीं अर्जित किया प्रत्युन मानव समाज के छाट-बड़े सभी वर्गों से निकट सम्पर्क भी स्थापित किया। नटों में तो उनकी घनिष्ठ मित्रता थी। भवभूति का यह जीवन कुछ दूर तक समकालीन वाण कवि से मिलता जुलता है। उत्तर रामचरित के ४/२२ के लक्ष के लक्षण से लक्षित होता है कि भवभूति न नाटको में स्वयं अभिनय किया है। सप्तम अंक के अन्त में बाल्मीकि को प्रवेश कराके कवि मानों स्वयं प्रविष्ट हो रहा है और कवि के विषय में घोषणा कर रहा है। राजशेखर ने भवभूति को बाल्मीकि का भवनार कहा है। सम्भव है बाल्मीकि पात्र का अभिनय भवभूति ने किया हो जिसके कारण राजशेखर ने उन्हें भवनार कहा है। अपने नाटकों का अभिनय के लिए उन्होंने नटों को प्रत्येक प्रकार से सहयोग देकर उत्साहित किया है, इसमें तो शेषमात्र भी सन्देह नहीं है। यद्यपि भवभूति जनता में प्रसिद्ध नहीं हो सके हैं फिर भी उन्हें नाटककार मान लिया गया था, और राजमाधव प्राप्त करने में वे सफल हो गये।

भवभूति के व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में उनके द्रव्य जो हमें शकित दन है वे अत्यन्त आक्षेपक और मनोद्वेष हैं। वे कभी भी भाग्य को अनुकूलता नहीं प्राप्त कर सके हैं। कीर्ति के लिए उन्हें अन्त तक संघर्ष करना पड़ा है। बहुत संभव है पारिवारिक जीवन की दैनिक आवश्यकताओं और भोजन के लिए भी उन्हें कष्ट उठाना पड़ा हो। उनकी कृतियों के विषय में जनता के नामधरु निरुपेक्षों की वे स्वयं दड़ी निन्दा करते हैं।^१ इन सभी बातों में प्रगट होता है कि कवि को जीवन में भाग्य के उनट-फेर बराबर देखने पड़े हैं। अन्त में भवभूति विजयी हो सिद्ध हुए हैं।

^१ मालती० माधव १/८ मा० मा० ८/१४, उत्तर० ७/४

ऐसी कौन सी वस्तु है जो उन्हें विरोधी विषय के माध्यम से दर्शाने के लिए प्रकट शक्ति देती रही है और जिसने उनका माहस को नय नय उपाहों से व्यक्त रखा। यह था- उनका एक प्रादुर्भाव पारिवारिक जीवन के वातावरण में जन्म लेना और जीवन बिताना। यही कारण है कि उनका प्रेम का आदर्श महान् और आध्यात्मिक था। वे सामाजिक विषयोद्-भोगों से, वापनाओं से काशों दूर एक महान् साधक थे। उनका प्रेम चित्र^१ निम्न चित्र^२ और उत्तम चित्र विज्ञान साहित्य में अनुपम है जो उनके आत्मनर की वास्तव्य व्यक्तताएँ हैं। वे अपने जीवन में सत्य पति और मित्र रहे हैं।

जन्मभूमि—भवभूति का जन्म स्थान पहचानने में विज्ञानों में विविध मत हैं। निश्चित निर्णय टाम प्रमाणों के अभाव में प्राप्त तक नहीं हो सका है। अधिकतर भवभूति का वरार देगोप (दक्षिण) कहा जाता है जिसका आधार माननी माधव की कुछ प्रार्थना हस्तनिर्मित प्रतिमा है जिसमें 'विद्वद्भेदु पद्मपुरम' ऐसा उल्लेख है। भवभूति के निवास स्थान का 'कलाप्रियनाथ' में विज्ञापन धिष्ट मन्त्र है। क्योंकि उनके ममी नाटक कलाप्रियनाथ के उत्सव में ही अभिनीत हुए हैं। यदि सर्व साधारण जन मान्यता के अनुसार कलाप्रियनाथ उज्जैन (मालवा) के महाकामेश्वर ही हैं, जिसका उल्लेख महाकवि कानिका^३ और बाणभट्ट^४ ने किया है, तो भूतधार का कथन भूगुप्त टीका है कि पद्मपुर दक्षिण में विद्वद्भेद में है। क्योंकि उज्जैन से वरार दक्षिण में है^५।

हिन्दु हमारे अनुसार वरार मानवा से लगभग पूर्व की ओर है। कला-प्रियनाथ का मन्दिर कालपी, कन्नौज या काश्मीर में होना चाहिए। कानपी और कन्नौज का अधीश्वर यमोवर्मा या जिसकी सभा में कवि रहे हैं और बाद में वे काश्मीर रहे हैं। 'दक्षिणापथ' शब्द से सूचित है कि

१-उत्तर ० / १३९

२-मा० मा० ९/४०

३-रघुवंश ६/३४, मेघदूत ३७, ३८ ४-कादम्बरी पृ० ३१ वाग्दे सीरिड

५-वत्सवल्कर - उत्तर रामचरित का इन्ट्रोडक्शन पृ० ३६

भवभूति उस समय जब उनका नाटक निमित्त हुआ उत्तराण्य में थे। यशोवर्मा के राज्य में रहकर वे उज्जैन नाटक खेलने नहीं जा सकते हैं। मालती माधव की प्राचीनतम हस्तलिखित प्रति नेवारी संवत् २७६=११५६ की है^१, जिसमें 'विदर्भपु' यह शब्द है ही नहीं। मालती-माधव के दृश्य पद्मावती नगरी से प्रारम्भ होते हैं। इस नगरी की स्थिति और देसकालीन रूपरेखा बड़ी विशेषता से चौथे अंक के अन्त और नवम अंक के प्रारम्भ में पूर्ण विस्तार के साथ वर्णित है।

श्री एस. वि. लले ने पद्मावती की एकता पवाया नामक पाप से, जो नरवर के उत्तर पूर्व खानियर प्रदेश के मध्य में है, मानी है। लेले ने पद्मावती और भवभूति के पद्मपुर को एक ही माना है।^२

कालीप्रियनाथ के बारे में विवेचन करते हुए उन्होंने लिखा है कि 'दक्षिणापथे' शब्द यह धर्म सूचित करता है कि-जहाँ नाटक खेला गया वहाँ से पद्मपुर दक्षिण की ओर था। कालपी कन्नौज राज्य की सीमा के भीतर है और पवाया वहाँ से दक्षिण की ओर है, जहाँ कवि का घर और परिवार था। लेले की धारणाओं की पुष्टि प्रसिद्ध पुरातत्व वेत्ता कनिंघम भी करते हैं।^३ कालपी और कलाप्रिय का नाम साम्प्रदायिक की जगह नहीं छोड़ता। पद्मावती के वर्णन की पूरी उपयुक्तता पवाया और नरवर से बैठ जाती है।

डा० वेल्डनकर का कथन है कि मालती-माधव में पद्मावती की वर्णन में भवभूति कहते हैं कि ये पर्वत मुझे दक्षिण के पर्वतों और गोदावरी की स्मृति देते हैं। अतः भवभूति दक्षिण प्रदेश से पूर्व परिव्रित थे और पद्मावती से बाद में उनका संपर्क हुआ। किन्तु हमारा कथन है कि भवभूति ने मालतीमाधव से पहिले उत्तर रामचरित की रचना की थी, जिसे हम आगे के अध्याय में सिद्ध करेंगे, और यहाँ

१—नेपाल दरबार लाइब्रेरी मैन्स्यु क्र० न० १४७३

२—'मालतीमाधव' सार और विचार पृ० ५

३—आर्कियोलॉजिकल रिपोर्ट १८६२-६५, पुस्तक २, पृ० ३०७-८

पर उत्तर के गोदावरी वर्णनों की स्मृति के बारे में मालतीमाधव में उनका संकेत है।

डा० भाण्डारकर का कहना है¹ कि भवभूति वरार के ही निवासी थे। घाज मध्य प्रदेश के चाँदा जिले के आस पास बहुत से बांधपेयी ब्राह्मण परिवार हैं जो कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता के अनुयायी हैं। चाँदा वरार और गोदावरी के अत्यन्त सन्निकट है।

कुछ भी हो इसना तो निश्चित है कि भवभूति के नाटक कालपी में खेले गए हैं और पद्मावती पवाया से एकता रखती है। भवभूति की युवावस्था तथा नाट्य रचना पवाया (नरवर) में प्रफुल्लित हुई है। जहाँ से वे कभीज की राजसभा में प्रसिद्ध होकर प्रवेश कर सके हैं। जिसका अत्यन्त प्रमाण माधव का चरित्र है जिसे कुछ दूर तक² हम कवि के जीवन से मिला पाते हैं। कवि भी युवावस्था में पद्मपुर छोड़कर पद्मावती भाये होंगे।

विभिन्न विद्वानों ने पद्मपुर को एकता-पद्मपुर(काभौर), उज्जैन (मालवा)करवीरपुर (कोल्हापुर) अमरावती के पास का स्थान और पवाया (नरवर, ग्वालियर) से सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। यह प्रश्न अभी और प्रमाणों की अपेक्षा समाधान में रहता है। हा भवभूति का जन्म दक्षिण में हुआ है, यह सभी को स्वीकार है।

नाटककार का नाम—महाकवि भवभूति के नाम के सम्बन्ध में भी विद्वानों में बहुत मतभेद है। डा० भाण्डारकर व बेलवलकर आदि का कहना है कि नाटककार का वास्तविक नाम श्रीकण्ठ या और भवभूति उनकी उपाधि थी। कुछ व्यक्ति भवभूति उपाधि के समर्थन में—

“तपस्वी कां गतोऽवस्थामिति स्मेरानना विव
गिरिजायाः कुचौ भन्दे भवभूति सिताननौ।”

¹—मालतीमाधव के द्वितीय संस्करण की भूमिका पृ० ३१

घोर—

“साम्बा पुनातुभवभूति पवित्रमूर्ति.”

पद्य उद्धृत करते हैं, जिनमें त्रिपुरारि, वीरराघव, ममेशराम, कृष्ण तैलग आदि हैं। भ्रम का कारण एक यह भी है कि उनके पिता के नाम के साथ भी कण्ठ (नीलकण्ठ) जुड़ा हुआ है। किन्तु यदि ‘कण्ठ’ शब्द वंश परंपरागत था तो भवभूति के पितामह भट्टगोपाल के साथ भी जुड़ा होना चाहिए था, जो नहीं लक्षित होना है। श्रीकण्ठ नाम के समर्थकों के तर्क हैं कि—प्राचीन काल में कविता में किसी विशिष्ट शब्द के प्रयोग से कवि का नाम उस शब्द से प्रसिद्ध हो जाता था। घण्टा माघ— माघ कवि के द्वारा ‘घण्टा’ शब्द के प्रयोग के कारण और छत्रभारवि— भारवि के द्वारा छत्र शब्द के प्रयोग के कारण प्रसिद्ध होगए। दशकुमार चरित की टीका में घनश्याम लिखते हैं कि कवि ने दण्ड शब्द का प्रयोग प्रारंभ में किया है अतएव कवि का नाम दण्डी हो गया है। इन प्रमाणों आधार पर उनका कहना है कि उपरिलिखित श्लोको में ‘भवभूति’ शब्द के वैशिष्ट्य के कारण श्रीकण्ठ का नाम भवभूति पड़ गया है। डा० बेलवलकर ने तो भवभूति को एक सुन्दर और आधुनिक मराठी ढंग का नाम दे दिया है— श्रीकण्ठ नीलकण्ठ उदुम्बर। किन्तु उन्हें यह ध्यान नहीं रहा है कि उस युग में दो चार अक्षरों के छोटे से नाम ही पर्याप्त होते थे। ऐसे नामों का जता प्राचीन युग में कहीं भी नहीं चलता है।

कल्याण और अनुमान पर आधारित तर्क लिखित प्रमाणों के सामने कोई अस्तित्व नहीं रखते हैं। प्राप्त साहित्य के किसी भी साधक ने नाटककार का उल्लेख श्रीकण्ठ शब्द से नहीं किया है। सभी ग्रन्थों, सुभाषितों और ऐतिहासिक उल्लेखों में भवभूति नाम ही मिलता है।

१—उत्तर रामचरित, इन्ट्रोडक्शन पृ० ३१

१—वभूव बल्मीकभय पुराकविस्त्वत प्रपेदे भुवि भट्टमेष्ठताम् ।

स्थित पुनयो भवभूति रेखया स वर्जते सम्प्रति राजेश्वर ॥^१

—राजशेखर

२—कविर्वाक्यतिराज श्री भवभूत्यादि सेवित ॥^२

—कल्हण

३—भवभूइ जलहि निगय कव्वामय रसकणा इव कुरन्ति ॥^३

—वाक्पतिराज

४—भवभूते सम्बन्धात् भुघरभूरेव भारती भाति ॥^४

—गोवर्धनाचार्य

५—भवभूते शिखरिणी निरर्गल तरङ्गिणी ॥^५

—क्षेमेन्द्र

और भी बहुत से उद्धरणों में सचच भवभूति नाम ही नाटककार के लिए प्रयुक्त हुआ है ।

मालतीमाधव की प्रस्तावना में 'भवभूतिनामा' कवि " शब्द है । जिसका अर्थ ही यह होता है कि भवभूति नाम है जिस कवि का । व्याकरण के नियमानुसार समास में यही अर्थ निर्णय के रूप प्रत्यक्ष आता है । जहाँ सन्देह का स्थान नहीं है ।

"भवभूतिनाम" वाक्य में 'नाम' यह अव्यय है । जिसका अर्थ प्रकाशन है । संस्कृत साहित्य में किसी वस्तु के नाम(सत्ता) बताने की यह एक साधारण और परंपरागत शैली रही है कि व्यक्तिवाचक सत्ता के साथ 'नाम' अव्यय को युक्त कर देना चाहिए । जैसे—नालिदास—'दिपालयो नाम नगाधिराज' "गिरिः प्रभवणो नाम" "श्रमणा नाम सिद्ध शायरी" आदि ।

^१—वासरामायण

^२—राजतरंगिणी

^३—गोडबहो

^४—गाथा सप्तशती ^५—सुवर्णतिलक ^६—जगद्धर टीका निर्णय सागर

भवभूति—उम्बेक, मंडन, सुरेश्वर, और विश्वरूपः—कुछ दिनों में एक नये ढंग के विवाद ने विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया है।^१ यद्यपि वह शान्त सा है। किसी विशिष्ट विद्वान को साहित्यिक मान्यता बहुत दूर तक प्रभावित करने में समर्थ होती है।

मालतीमाधव की एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति में जो समवत ४०० वर्ष से अधिक पुरानी है, तृतीय और छठे अंक के अंत में उल्लेख है—“प्रकरणमिदं कुमारिलजिप्यम्बेकाचार्य स्येन।” इसी प्रति के अंत में अंको में भवभूति रचित होने का उल्लेख है। इस प्रमाण के पल पर भवभूति मल्लिकार्जुन मीमांसक कुमारिल के शिष्य सिद्ध होते हैं। आचार्य उम्बेक कुमारिल भट्ट के शिष्य और ऊँचे मीमांसक थे। यह प्रभाव के विराधी और कुमारिल के ‘श्लाकवाचिक’ के ऊपर टीका करनेवाले हैं। इनमें यह मिथ्या हुआ कि भवभूति का दूसरा नाम उम्बेक था। इस विषय पर विचार का एक पक्ष यह भी हो सकता है कि—प्राप्तमालती माधव, एक मिश्रित कृति है। जिसके कुछ अंश की रचना उम्बेक ने और कुछ अंश की रचना भवभूति ने की है। संभव है भवभूति रचित मालतीमाधव के कुछ अंक उम्बेक को पसंद न आए हों और उन्होंने उनमें स्थान दूसरे अंग निर्दिष्ट कर रख दिए हों। यही कारण है कि भवभूति रचित कुछ पद्य जो सुभाषित ग्रन्थों में संकलित हैं—प्राप्त नाट्यग्रंथों में नहीं प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार उत्तररामचरित की एक हस्त लिखित प्रति भवभूति का नाम नीलकण्ठ देती है। मालती माधव की ११५६ ई० की हस्तलिखित प्रति में दशम अंक के अंत में है—“कृतिरिमं महाबाह्वर भूगर्भस्य” जिससे यह भनकता है कि भूगर्भ भी भवभूति का एक नाम रहा होगा।

भवभूति और कुमारिल दोनों दाक्षिणात्य थे। दोनों के समकालीन

^१—लेले पृ० ८४, एम० पी० पण्डित ^{१२} वही के इन्ट्रोडक्शन में, टा० भाण्डारकर : मालती माधव की भूमिका, पृ० ८

होने की सम्भावना भी कम नहीं है। भवभूति ने भीमासा शास्त्र के पारिभाषिक शब्द 'अर्थवाद' को उल्लेख किया है^१। किन्तु डा० वेल्-वलकार का कहना है कि सबल प्रमाणों के अभाव में हम भवभूति को कुमारिल भट्ट का शिष्य नहीं कह सकते हैं। क्योंकि इनकी कृतियों में वेदान्त दर्शन की सर्वत्र छाप है^२।

विचार का विषय यह है कि भवभूति ने अपने गुरु को 'ज्ञाननिधि' नाम से अभिहित किया है न कि कुमारिल भट्ट, जिसमें किसी प्रकार की आपत्ति उन्हें न होनी चाहिए थी। हमारा यह मत है कि कुमारिल का ही दूसरा नाम ज्ञाननिधि हो सकता है अथवा भट्ट जी की यह उपाधि रही होगी। कवि श्रद्धावश भी स्वनामधन्य गुरु का नाम न देकर उन्हें ज्ञाननिधि रूप में उपस्थित कर सकता है। 'परमहंसाना श्रेष्ठाः ज्ञाननिधिः' का विशेषण उन्हें वेदान्ती सिद्ध करता है। आचार्य कुमारिल पूर्वं भीमासा के विद्वान् तो थे ही किन्तु उत्तर भीमासा के भी पूर्ण पण्डित थे, ऐसा विद्वानों का कहना है। श्लोक आदिक की यह उक्ति भी यही सिद्ध करती है—

“इत्याह नास्तिक्य निरोक रिपु—

रात्माऽस्ति तां भाष्यकृत्र युक्त्या

दृढत्वमेतत्प्रियरच बोधः

प्रयानि वेदान्त निषेवणैः ।”

साथ ही यह कोई ईश्वरीय नियम नहीं है कि एक विषय का विद्वान् दूसरे विषय का विद्वान् न हो सके। उस युग के विद्वान् हमारे विषय के मर्मों को जानने के बाद उनके सङ्गठन अथवा मण्डन में तत्पर होते थे। आचार्य शकर इस विषय में प्रमाण हैं।

यथा एक शिष्य के अनेक गुरु नहीं हो सकते हैं। भवभूति के पूर्व

^१—उत्तर रामचरित १/३६ ^२—इन्ट्रोडक्शन : उत्तर रामचरित पृ० ४२

मीमांसा के गुरु कुमारिल भट्ट और उत्तर मीमांसा के ज्ञाननिधि हो सकते हैं। जिन्हें हम घागे याचार्य शंकर के साथ एकरूपता पर विचार करने के लिए पुनः उपस्थित करेंगे।

उत्तर रामचरित के चौथे अंक में दाण्डायन और सीघातकि वाद-विवाद में 'समासोमधुपर्क' इति—यह जो वाक्य है, वह मीमांसकों की भांति श्रौतकर्म समयक के रूप में भवभूति को उपस्थित करता है। भवभूति के विवर्तवाद की प्रसिद्धि तो है ही। यही कारण है कि भवभूति ने पहिले 'पदवाक्यः प्रमाणजः,' विशेषण अपने लिए दे दिया है। श्लोकपाणिन की तात्पर्य टीका में 'भट्टोऽम्बेक' शब्द आया है, जो कि भवभूति के पितामह भट्टगोपाल की भांति पूर्व संयोजित भट्ट विशेषण के सहित है। चतुःशास्त्रवेत्ता की उपाधि उस समय 'भट्ट' थी। भवभूति के पिता चारों शास्त्रों के पण्डित न थे। इसीलिए उनके नाम के पहिले भट्ट शब्द नहीं व्यवहृत हुआ है। तात्पर्य टीका के अंक में भट्टोऽम्बेक ने "ये नाम केचिदिह नः श्रयणस्त्यक्ता जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैव यतः। उत्पत्स्यते मम तु कोऽपि समान धर्मा कालो ह्यपि निरवधिर्विपुला च धरणी॥" श्लोक स्वयंकृत के रूप में दिया है। यह श्लोक भवभूति के मातृमीमांसक का है।^१ इन सभी प्रमाणों से उम्बेक और भवभूति की एकता सिद्ध हो जाती है।

प० क्षीतीशचन्द्र चट्टोपाध्याय का कहना है^२ कि उम्बेक और भवभूति एक नहीं हैं। यद्यपि प्रत्यक स्वरूप भगवान् चित्सुखी की अपनी गगन प्रसादिनी में "उम्बेको भवभूति," कहते हैं, किन्तु उन्हीं के शब्दों को देखिए :—

"नहि पुराप्त एव सन् नाटक नाटिकादि प्रबन्ध विरचन माने गानाप्तो भवति भवभूतिः। उक्त चैतदुम्बेकेन "यदात्तोऽपि कर्मवि-

^१—उत्तर रामचरित प्रस्तावना

^२—मा० मा० १।८

^३—दि डेट ग्राफ कीमुदी महोत्सव पृ० ३९९, विन्टरनिट्ज मेमोरियल बम्बर।

दुपदिशति न स्वया ननु भूतार्थं विषयं वाक्यं प्रयोक्तव्यं यथागुत्स्यं
हस्तिपूयजनम सन् ।”

इस उक्त्य से भवभूति और उम्बेक के मध्य में अन्तर स्पष्ट हो
उठता है। ‘उक्तं चैतदुम्बेकन’ के स्थान पर ‘उक्तं चैतरोनैव’ होना
चाहिए। चट्टोपाध्याय जी आगे कहते हैं कि भवभूति ऐसे गवाँले व्यक्ति
की शैली से उम्बेक की शैली का मेल भी नहीं बैठता है। किन्तु
पण्डित जी ने यह विचार नहीं किया है कि एक ही व्यक्ति विषयानुसृत
भिन्न भिन्न शैलियाँ अपनाना सकता है, यदि वह निष्ठहस्त कलाकार है।
दर्शन और साहित्य की शैलियाँ भिन्न भिन्न होनी हैं।

मीमांसक मण्डन मिश्र जब आचार्य शंकर से परास्त होकर सन्यासी
हुए तो उनका नाम सुरेश्वराचार्य हो गया। माधव ‘शंकर-विजय’ में
मंडन को ही सुरेश्वर कहते हैं। ‘विवरण प्रमेय संग्रह’ में माधव
सुरेश्वराचार्य की ‘बृहदारण्यक वार्तिक’ से उद्धरण देते हैं किन्तु लेखक
का नाम विश्वरूपाचार्य कहते हैं। माधव के मत से—मंडन, विश्वरूप और
सुरेश्वर एक ही व्यक्ति हैं। विभावन ने याज्ञवल्क्य स्मृति की विश्वरूप
कृत व्याख्या की व्याख्या में लिखा है—

“भवभूति सुरेश्वर्य विश्वरूपं प्रणम्य तम्”

इस पद्य से भवभूति, सुरेश्वराचार्य और विश्वरूप की एक रूपता
स्पष्ट सिद्ध है। प्रत्यक्ष स्वरूप भगवान् अपनी ‘तयन प्रसादिनी’, में
उम्बेक को भवभूति कहते हैं।^१ भवभूति की सभी कृतियाँ मीमांसा,
स्मृति और वेदान्त में उनकी ममान प्रतीति प्रदर्शित करती हैं। माधव
आप्त ‘शंकर विजय’ में स्पष्ट रूप में कहते हैं, कि उम्बेक मण्डन मिश्र
का ही नाम था और वे विश्व रूप भी कहे जाते थे^२।

उक्त विवेचन में यही सिद्धान्त सज्जत रूप से सामने आता है
कि स्पष्ट प्रमाणों के अभाव में हम भवभूति उम्बेक, मंडन, सुरेश्वर

^१—वर्ष १९३६ एडिशन तत्त्वत्रयीपिका २६५ ^२—शंकर विजय ७/११३-१६

और विश्वरूप को पृथक् पृथक् व्यष्टियाँ बयो माने ? जब कि इनकी एक रूपता के स्पष्ट निखिल प्रमाण हमारे सामने हैं ।

भयभूति का पाण्डित्य—महाकवि भयभूति का अध्ययन अत्यन्त गंभीर और विशाल था । उनका प्रगाथ पाण्डित्य का परिचय मानतीमाधव ने चतुता है, जिसमें उन्होंने सभी शास्त्रों के अध्ययन की ओर स्पष्ट संकेत किया है^१—

“यद्विध्ययनं तथोपनिषदां सांख्यस्य योगस्य,
य ज्ञानं तत्कथनेन किं नहि तत् कश्चित् गण्यं नाटके ।
यत्प्रौढत्वं मुदागता च यच्चमा यच्चार्थं तो गौरवम्,
तच्चेदस्ति तत्तस्मिन्नेव गमकं पाण्डित्यं वैदग्ध्यम् ॥

ये महान विद्वान् थे । उन्होंने वेद, उपनिषद, सांख्य योग और वेदान्त का अध्ययन किया था । उत्तररामचरित की प्रस्तावना में वे स्पष्ट शब्दों में कहते हैं—

“पदवाक्य प्रमाणम्”

अर्थात् व्याकरण, भौमोक्ता और व्यास शास्त्र के पारंगत । कवि गौड़ी रीति के आचार्य हैं । बाणी तो कवि के भावों और विचारों का अनुगमन करती चलती है । उनका कथन वस्तुन सत्य है—

“यं ब्रह्माणमियं देवी वागश्रेयानुवर्तत ॥”^२

वेद और दर्शनो सम्बन्धी उनका ज्ञान अनुपम था ।

महावीर चरित में पुरोहित की प्रशंसा में—“राष्ट्रगोपः पुरोहित” यह ऐतरेय ब्राह्मण का प्रसिद्ध पद्य उद्धृत किया गया है ।

‘विज्ञाकल्पेन मरुता मेघानां भूयसामपि ।

ब्रह्मणीव विजृम्भिता कथापि प्रतिलयः कुतः ॥”^३

^१ मा० मा० १/१० ^२—उत्तर० २१२,

^३—उत्तर० ११६,

इस पद्य में कवि ने अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्त का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया है। व्याकरण दर्शन के अनुसार कवि शब्द-ब्रह्म के भी उपासक हैं। उत्तर के प्रारम्भ में—

✓ वाख्यो भवतामात्मनः कलाम् ”

और सप्तम अंक के अन्त में—

‘शब्दब्रह्मविद’ से यही सिद्धान्त प्रस्फुटित होते हैं। भवभूति का वेदान्त आचार्य शंकर के वेदान्त से कहीं २ अन्तर भी रहता है। उत्तर के द्वितीय अंक में भवभूति “शब्द ब्रह्मणस्तादृशं दिवतम् ” में सृष्टि को परिणाम स्वीकार करते हैं। जबकि शंकराचार्य विवर्त मानते हैं।

मालती माधव में कवि ने सांख्य, योग बौद्ध और तन्त्र आगमों का ज्ञान प्रदर्शित किया है। पातञ्जल योग दर्शन और कापालिक दर्शन का चित्रण मालतीमाधव के ३/१, २^१ में साग निरूपित हुआ है। इसी नाटक^२ के ५।१० में कवि ने महान कोशल के साथ माधव के मुख से मालती के हृदय अविच्छिन्न होने के विषय में—योगाचार, सांख्य, सौत्रा-
न्तिक, त्रिदण्डि, पातञ्जल, मंथानिक, विज्ञानवाद आदिमतों के सिद्धान्तों का उल्लेख किया है।^३ उत्तर रामचरित में अन्त के मुख से “ममुपनिषत् तै लोकाः” ईशावास्योपनिषद् को व्याख्या कराई है। उत्तर रामचरित के २।३ में ‘उद्गीथविदो वसन्ति’ में कवि ने छान्दोग्य उपनिषद् के उद्गीथ = प्रणव = ओम्-रूपी त्रिगुणात्मक एकामुर ब्रह्म का ही चित्रण किया है। कवि छान्दोग्य के पूर्ण ज्ञाता थे। भवभूति की भाषा में दर्शन के पारिभाषिक शब्द इन्होंने अधिक हैं कि जिनसे प्रतीत होता है—मानो लेखक दर्शनों का सतत चिन्तन करता रहता है। काम शास्त्र के लो वे आचार्य ही थे। मालतीमाधव के प्रथम अंक में माधव विरह व्यञ्जना में कवि काम की दशों दशाधों का चित्रण कर देता है।

^१—मा० मा० निर्णय-सागर प्रेस

^२—चतुर्थ अंक

^३—देखिए निर्णयसागर जयद्वर टीका,

संस्कृत साहित्य में कविकर्म में प्रवेश का अर्थी बलकार और छन्द शास्त्र का मर्मज्ञ होना का पहिले ही प्रयत्न करलेता है । भवभूति इन शास्त्रों में पूर्ण रूप से निष्णात थे । जिसका प्रमाण हम आगे के अध्यायों में अवसर आने पर देंगे ।

महाकवि महाकाव्य (रामायण और महाभारत) के ज्ञाता तो थे ही, उनका पौराणिक ज्ञान भी महान् है । उत्तर रामचरित का कथानक पद्मपुराण के पातालखण्ड से लिया गया है । विद्याधर की अवी विज्ञप्ति में (उत्तर रामचरित) भवभूति ने मार्कण्डेय पुराण के प्रलय-विषयक विवरणको स्पष्ट रूप से उपस्थित किया है । स शेष में, भवभूति का शास्त्र ज्ञान वैदिक्य में किसी अन्य नाटकाद से कम न था ।

भवभूति का समय—महाकवि भवभूति ने अपना और अपने परिवार का परिषय अपने नाटकों की प्रस्तावनाओं में छोटे से रूप में दिया है । किन्तु अपने समय का कुछ भी संकेत उन्होंने नहीं किया है । यहा तक कि उनके आश्रयदाता के विषय में भी कोई संकेत हम उनसे नहीं प्राप्त कर सके हैं । उनके समय और आश्रयदाता नरेश के विषय में हम अन्य लेखको पर आधारित हैं, जिन्होंने उनके उद्धरण दिए हैं अपना उनका उल्लेख किया है ।

१—भारतीय संस्कृत साहित्य में कल्हण की राजतरंगिणी एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है । इसके अनुसार कामरौर नरेश ललितादित्य ने भवभूति के आश्रयदाता यशोवर्मन् कक्षीत्र नृपति को परास्त कर दिया ।

“कविर्वाक्यतिराज श्रीभवभूत्यादि सेवित”

जितो ययौ यशोवर्मा तद् गुणस्तुति वन्दिताम् ॥” ४/१४४

सम्राट् ललितादित्य का समय-निर्धारण सर्वप्रथम हमें करना चाहिए । इसके पश्चात् यशोवर्मा का समय निश्चित किया जा सकता है । कल्हण

१—राजतरंगिणी, आम्बे संस्कृत सीरिज, प० दुर्गा प्रसाद सपादित चतुर्थतरंग ॥

में लौकिक धर्मवा सन्निधि सवत् का व्यवहार किया है। उन्होंने घरनी कृति २४ वें लौकिक (१०७० एक) सवत् में प्रारम्भ की थी। जयसिंह ने, जिसने राज्य में बल्लहण ने घपनी तरंगिणी की रचना की है, २२ वर्ष राज्य किया। ललितादित्य से जयसिंह का समय ए० पी० पण्डित ने ४५५ वर्ष, ७ माह, ११ दिन निर्धारित किया है। ललितादित्य का सम्राट होने का काल ६२५, ४, १९ तक सवत् (६९३ ई०) था। जयसिंह भी यही तिथि मानते हैं। किन्तु पंडित महोदय ६२५ ई० स्वीकार करते हैं जिस टोपर भी स्वीकार करते हैं। विद्वानः ललितादित्य का समय ६९१-७२९ या ७३० तक मानते हैं। उनका कहना है कि ए० पी० पण्डित की तिथि चीनी समय से ठीक नहीं बैठती है। चीनियों के अनुसार चन्द्रापीड ने, जो ललितादित्य का भाई या और तारापीड के पहिले शासन पर आरुढ़ हुआ, ७१३ ई० में चीन में राजदूत भेजा और ७२० में चीन सम्राट के द्वारा राजा की उपाधि प्राप्त किया। बल्लहण का कहना है कि चन्द्रापीड ६९९ ई० में मर गया। चीनी समय में बल्लहण के समय में ३१ वर्ष का यह अन्तर विचार का विषय है। चीनी समय निर्धारण अभी असत्य नहीं होता है। यदि चन्द्रापीड ६९९ में मर गया होता तो ७१३ ई० में कैसे राजदूत को चीन भेजता। बल्लहण लिखते हैं कि ७३६ में ललितादित्य में चीन में राजदूत भेजा। यदि चीनी समय के अनुसार बल्लहण के समय (नानोलाजी) की ठीक करने के लिए हम ३१ वर्ष बल्लहण की तिथियों में और जोड़ दें तो ललितादित्य का समय ७२४-७६० ई० या ७३१-७६७ ई० होगा। और यशोवर्मा की हार ललितादित्य से ७२४ ई० या ७३१ ई० का बाद की घटना होगी।

डा० आटो स्टेन का कहना है कि यह घटना ७३६ ई० से पूर्व की नहीं हो सकती।^१ स्टेन का कथन है^२ कि चीनी लेखकों के अनुसार-

^१—इन्डोडक्शन उत्तररामचरित, शारदारजन दे

^२—राजतरंगिणी, अनुवाद पृ० ३/८९ ^३—राजतरंगिणी भूमिका पृ० ८९

मध्यभाग के 'आई-चा फोन मो' नामक नरेश ने ७३१ ई० में चीन में राजदूत भेजा था था, जिसकी मैं यगोवर्मा से एकता मानता हूँ । वह नवभूति का आश्रयदाता था ।'

मुत्तापीड ललितविद्या का जो राजदूत चीन गया था, वह अपने को मध्यभाग के सम्राट (यगोवर्मा कजोत्र) के मित्र का दूत कहता है । डा० स्टेन का यह कहना कि ललितविद्या ने चीन में राजदूत भेजने के बाद यगोवर्मा का हत्या—डा० जैकोबी व मिहान्तों और चीनी प्रमाणों में अत्यन्त सिद्ध हो चुका है ।

७—प्रो जैकोबी ने पण्डित के गौडवहो सम्करण के ८२७-८३१ के पद्या के आधार पर कहा है कि ललितविद्या की यगोवर्मा पर चढ़ाई जिस समय हुई उस समय सूर्य ग्रहण पड़ा था । ज्योतिष के आधार पर डा० जैकोबी ने इस सूर्य ग्रहण का समय १४ अगस्त ७३३ ई० माना ।

डा० माण्डारकर भी नवभूति का यगोवर्मा की राजसभा का कवि स्वीकार करते हैं । जनरल कनिंघम के अनुसार ललितविद्या का समय ६९२-७६२ ई० है । इस तिथि के अनुसार यगोवर्मा की पराजय ७४० ई० के लगभग हुई है ।

यगोवर्मा के मन्त्रावधि वाक्पतिराज ने अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में 'गौडवहो' नामक प्राकृत काव्य १२०० पद्यों में लिखा है । किन्तु यह अनूरा है, जो कवि को यगोवर्मा के राज्य का उत्तर कालीन सिद्ध करेगा है । इसमें लगभग एक गौड राज के वंश का वर्णन करना है, किन्तु गौड राजा का कोई नाम निर्दिष्ट नहीं किया गया है । इसका मनाइन सकर पाण्डुरंग पण्डित ने किया है । इसकी भूमिका में यगोवर्मा के समय और वाक्पति के समय पर विचार किया गया है । डा० बुद्धर ने भी गौडवहो के समय आदि के बारे में विचार किया है ।^१ हमारे विचार का प्रश्न यह है कि गौडवहो की रचना क्यों हुई ? और इसमें गौडनरेश के नाम का भी उल्लेख नहीं है तथा उसका वंश भी

^१—उल्लू० जेड० के० एम०, वाड २५० ३२८-४०

नहीं हुआ है। इसका समाधान यही हो सकता है कि वाक्पतिराज यशोवर्मा के उत्तर-काल में हुए होंगे। अन्य रचना राजा के वैभवशाली दिवसों में प्रारम्भ की होगी। इसी बीच में ललित दिली से यशोवर्मा के पराभूत हो जाने के कारण अन्य रचना पूरी न हो सकी। यशोवर्मा के विकास काल के अन्त के साथ साथ ग्रन्थ के विकास का भी अन्त हो गया।¹ इस निष्कर्ष के आधार पर गौडवहो का रचना काल ७३६ ई० से बहुत दूर नहीं हो सकता है।

वाक्पतिराज और भवभूति की समसामयिकता दो सखों पर स्पष्ट है। राजतरंगिणी प्रथम और गौडवहो द्वितीय। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि वाक्पतिराज गौडवहो के लेखक हैं। जिस दुर्भाग्यपूर्ण घटना के कारण वाक्पतिराज का ग्रन्थ अधूरा रह गया है, उसका स्पष्ट संकेत गौडवहो में है। कहलुग वाक्पतिराज, के साथ नाटककार भवभूति का उल्लेख करते हैं, यह भी निम्नलिखित है। वाक्पतिराज और भवभूति का जज्ञोज के राज दरबार में बैस साथ हो गया इसके विषय में कोई भी प्रमाण हमारे पास नहीं है। भवभूति वाक्पतिराज के पूर्वकालीन थे यह भी मिट्टी ही है। किन्तु राजसभा में वाक्पतिराज को विशेष सम्मान प्राप्त था। भवभूति राजा के विशेष प्रिय इस लिए नहीं हो सके कि उन्होंने राजा की प्रशंसा में कोई रचना नहीं की। यही कारण है कि भवभूति सदा अग्र-नुष्ट रहे हैं। वाक्पतिराज का नाम कहलुग ने प्रारम्भ में इसी लिए दिया है कि वाक्पतिराज राज सभा के प्रधान कवि के रूप में स्थायी स्थान प्राप्त करने में सफल हुए, भवभूति नहीं। संभवतः भवभूति राज सभा में जब कभी उपस्थित होते रहे हैं। इस युग में भवभूति नाम का और कोई भी कवि नहीं प्राप्त होना है।

वाक्पतिराज अथवा गौडवहो में जाठ पद्यों में भवभूति का उल्लेख करते हैं²। वाक्पतिराज राजा के धनिष्ठ मित्र हैं और प्रधान कवि की

¹—एम० पी० पण्डित, भूमिका गौडवहो पृ० ७२

²—एम० पी० पण्डित, संस्करण ७९७-८०४.

उपाधि राजा ने उन्हें दी है। यद्यपि वह नैसर्गिक प्रतिभा संपन्न कवि नहीं है किन्तु उन्हें जो आदर मिला है वह नम्रतामय की शिक्षा और स्नेह के कारण है। उनके कवित्व में जो अमृत क छोटें हैं, भवभूति के काव्य-सागर के मग्न्यन से हैं।^१ इसके बाद वे भास कालिदास का उल्लेख करते हैं। इससे सिद्ध है कि नाटककार भवभूति की ही यह चर्चा कर रहे हैं। ७९; पद्य में वह भवभूति का प्रभाव और ऋणस्वीकार करते हैं।

“भरभूइ जलहि निगाय कद्वामयरस कणा इवफुरन्ति ।
जस्त विपेसा अज्जवि वियडेसु कहाणिवेसेसु ॥”

वाक्पति राज के ऊपर भवभूति का मधुर प्रभाव पड़ा था। संभवतः वाक्पति ने भवभूति के ग्रन्थों का गंभीर अध्ययन किया था। भवभूति और वाक्पति के रचना काल में कुछ दीर्घ अन्तर अवश्य रहा है यह अपर्युक्त कथनों से सिद्ध है। भवभूति राजा के पूर्वार्धकाल के कवि हैं, जबकि वाक्पति उत्तरार्ध काल के—इसमें सन्देह नहीं है।

कुछ विद्वानों का कथन है कि गोष्ठवहो की रचना यशोवर्मा की पराजय के बाद ७३३-७५३ ई० के बीच हुई है और भवभूति ८वीं शती ई० के पूर्वार्ध में हुए हैं।^२ पर यह असत्य सिद्ध हो चुका है। भवभूति का समय प्रायः सभी विद्वान ७वीं शती ई० का अन्त मानते हैं।

भवभूति के समय निर्धारण के विषय में कुछ विद्वानों का मत है कि भवभूति कहीं भी अपनी कृतियों में कन्नौज और यशोवर्मा का संकेत नहीं करते हैं। श्री आनन्दराम बरमा का कहना है कि “मैं फिर से कह सकता हूँ कि भवभूति कहीं भी कन्नौज के अस्तित्व के विषय में भी नहीं बहते हैं। उनके नाटकों का कलाप्रियनाथ (महाकाल) के सामने अभिनीत होने से सिद्ध है कि वे उज्जयिनी से संबंधित थे।” बरमा का यह भी कहना है कि ‘कवि वाक्पतिराज’ में वाक्पतिशब्द भवभूति

^१ —शारदारजनरे-उत्तर की भूमिका

की उपाधि है। किन्तु बरुआ का कथन नितान्त अनर्गल है। महाकवि कालिदास न भी विज्रमादित्य का कोई कथन नहीं किया है। 'कवि' वावपति राज' की व्याख्या भी वेव्यर्थ में मनमानी करते हैं। यशोधरा की समा में भवभूति का होना एक सिद्धसिद्धान्त है।

✓ ३—जनश्रुति के अनुसार कालिदास और भवभूति को कुछ लोग समसामयिक स्वीकार करते थे। भवभूति को भी कालिदास के साथ विज्रमादित्य की समा का एक रत्न माना गया है। कथा इस प्रकार है—कालिदास विज्रमादित्य की समा के एक रत्न थे। एक दिन एक ब्राह्मण कालिदास के पास आया और उनसे विज्रमादित्य से भेंट कराने और राज्याभ्युदय दिलाने की प्रार्थना की। आश्रुत महाशय कवि भवभूति से उन्होंने अपने उत्तररामचरित को महाकवि को बड़े उत्साह और स्वर के साथ सुनाया। कालिदास भवभूति की दशमे सार भी खेलते जाने थे और सुनते भी जाने थे। जब भवभूति ने वाक्य समाप्त किया तब कालिदास ने भवभूति की बहुत प्रशंसा की और कहा कि यदि आप को स्वीकार हो तो १३२७ इ.स. की अन्तिम पंक्ति में एक अनुस्वार हटा दें। ("रात्रिरेष ध्यरसीन्") महाकवि के आदेशानुसार भवभूति ने कर दिया। भवभूति भी विज्रमादित्य की समा के एक रत्न हो गए।

कालिदास भवभूति से पहिले थे हैं, यह तो निर्विवाद सिद्ध ही हो चुका है। समग्र कालिदास के ३७५—४७१ ई० के बीच के होने के बारे में विद्वानों का बहुमत है^१ कालिदास का प्रभाव भवभूति के ऊपर अत्यधिक है यह हम यथास्थान आगे सिद्ध करेंगे।

भवभूति और कालिदास सम्बन्धी एक उल्लेख बल्लाल सेन विरचित भोज प्रबन्ध में भी पृ० १२६ में है। भवभूति को वाराणसी से आया हुआ कवि कहा गया है और जिन्हें भोज राज की समा में स्थान दिया

^१—प्रो० वे० बी० पाठक, प्रो० बी० सीविश, डा० बी० एस० उपाध्याय

गया है। भोज प्रबन्ध में भवभूति और कालिदास की तुलना कराई गई है। और कालिदास की श्रेष्ठता व्यक्त की गई है। किन्तु भोज की सभा में कालिदास और भवभूति आदि बाहोना अनैतिहासिकता की पराकाष्ठा है। भोज के पूर्व पुरुष (चाचा) भोज की सभा में स्थित दशरूपक कारन भवभूति के श्लोका को अपने ग्रन्थ में उद्धृत किया है। तब भवभूति किस भोज के समय में आ पड़ेगा। भोज प्रबन्ध की अनैतिहासिकता तो सब विदित है।

प्राप्त प्रमाणों के आधार पर भवभूति बाणभट्ट के बाद के है। कन्नौज के सम्राट हर्षवर्धन ६०६—६४८ ई० तक शासन करते रहे हैं। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने उनके राज्य के विषय में कई महत्वपूर्ण विवरण दिए हैं। महाकवि बाण हर्ष के सभाकवि थे। उन्होंने हर्षवर्धन नामक काव्य में अपने आश्रयदाता की कीर्ति गाई है। इस पुस्तक का समय ६१० ई० है। बाण हर्षवर्धन की भूमिका में भास, कालिदास और दूसरे ग्रन्थ प्रसिद्ध कवियों के साथ भवभूति का उल्लेख नहीं करते हैं। यदि भवभूति बाण के पूर्व के होते तो बाण ऐसे सहृदय महाकवि भवभूति का उल्लेख भास कालिदास आदि नाटककारों के साथ अवश्य करते। सम्भवतः वे दोनों महाकवि समकालीन थे। भवभूति अपने समय के पूर्वार्धकाल में विशेष प्रसिद्धि नहीं प्राप्त कर सके थे। इस समय तक बाण का हर्षवर्धन बन चुका था। भवभूति का उदयकाल और बाण का उत्तरार्धकाल एक ही रहा होगा, इसमें सन्देह नहीं है। भवभूति बाण में कुछ बाद के है।

कलहण की राजतरंगिणी के अनुसार वामन काश्मीर नरेश जयापीड के मंत्री—मण्डल में थे। इनका समय ८०० ई० है। वामन का उल्लेख राजसेखर और अभिनव गुप्त^१ आदि जो नवी शती ई० के हैं, करते हैं। वामन उत्तररामचरित के “इयं गोहे लक्ष्मो” श्लोक अपने

^१ ——द्विग्यालीक सोचन पृ० ३७

काव्यालंकार सूत्रवृत्ति में उद्धृत करते हैं। अतः भवभूति वामन से पहिले के हुए ।

जैन साहित्य के अनुसार^१ जैन साधु बप्पाभट्ट ने यशोवर्मा के पुत्र घामराज को जैन बनाया जो गुजरात में था । बप्पाभट्ट का समय ८०७ विंशम सम्वत् है । इससे सिद्ध होता है कि यशोवर्मा ८०७-८११ विंशम सम्वत् के आसपास स्वर्गगत हुआ और भवभूति घाटवी शती में हुए सिद्ध हात हैं । किन्तु कन्नौज के यशोवर्मा के घामराज नाम का कोई पुत्र नहीं था, यह इतिहास से सिद्ध है ।

महाकवि राजशेखर भवभूति को बड़े आदर और श्रद्धा के साथ उल्लिखित करते हैं । उनका कहना है^२ कि पूर्वकाल में जो बाह्यकी भनू^३ भेष्ट हुए, वही भवभूति राजशेखर के रूप में अवतरित हैं । रामकथा के सम्बन्ध में यह सिद्ध है कि राजशेखर नाटककार भवभूति का ही उल्लेख कर रहे हैं जिन्होंने औरचरित और उत्तररामचरित लिखा है । राजशेखर बालरामायण ४।४१ में भी भवभूति के महावीरचरित का उल्लेख करते हैं । राजशेखर अपनी सभी कृतियों में अपने को कन्नौज नरेश महेंद्रपाल का आध्यात्मिक गुरु कहते हैं । महेंद्रपाल के समय की सिमाधीनी^४ का जिनालेख ७०३-४६० स्पष्ट रूप से कहता है । राजशेखर के उल्लेख में स्पष्ट सिद्ध है कि भवभूति के स्वर्गवास के बाद राजशेखर ने अवतार लिया है । अतः भवभूति का समय ७ वीं शती का अन्तिम भाग है । बाण ने कवि का उल्लेख नहीं किया है । माधवाचार्य के शंकरदिग्विजयानुसार भी भवभूति ७ वीं शती के हैं । बरघना भवभूति को ५ वीं शती का कहते हैं । अनर्घरायण और प्रसन्नरायण पर भवभूति के प्रभाव को देखकर उनका कहना है कि भवभूति राजशेखर से बहुत पहिले के हैं । बाण ने उनका उल्लेख नहीं किया है । यह कोई बड़ी बात

१—'प्रबन्धकोश' राजशेखर

२—वाचरामायण १ । १६

३—कीरतानं एगिप्राकिया १।१७१ काण्डिइ

नहीं है। बाग ने जो बाल्मीकि का भी उल्लेख नहीं किया है। बदमाश भवभूति को कालिदास के समय के साथ पहुँचा देते हैं।

चिन्तु बरखा जी के कथन का सण्डन बाह्य साक्ष्यों के साथ साथ अन्त साक्ष्यों से भी हो जाता है।

१—भवभूति की शैली ५ वीं शती की शैली से बहुत भिन्न और प्राग है। गुप्तयुग के जिनानेखों की शैली बहुत ही नैसर्गिक और सहज सौन्दर्य से भरी हुई अष्टविम साही है। यह शैली कालिदास की कला का भी मूलरूप है। अर्थात् वाद कविया और लेखकों ने एक दूसरी ही शैली का ढाँचा लेकर कर लिया, जिसमें कृत्रिमता और सजावट ने नैसर्गिकता और सादगी का स्थान ले लिया है। सब ममास, टेढ़े शब्द आलङ्कारिता और अतिशयोक्ति इस शैली के सौन्दर्य के मापदण्ड बन गए। भवभूति की शैली इसी प्रकार की थी। महाभारत के पाठ स्पष्टतः पहुँचे हुए हैं।^१ के बाण के सामयिक या कुछ बाद के हैं पहिले के नहीं।

२—‘विद्याकल्पेन मरुतो मघाना भूयसामपि—ब्रह्मणीव विद्यता-
नाम्’^२ में विवर्तवाद की भ्रान्ति के आधार पर अद्वैतवाद का सिद्धांत आचार्य शंकर के मद्देनान् विकसित हुआ है। भवभूति आचार्य के पीछे या समसमय में हुए हैं। भवभूति का वैदिक ज्ञान, वैदिक कर्मकाण्ड के प्रति प्रेम और वैदिक शब्दावलि का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि वह वैदिक पुनर्जागरण काल ७वीं शती के पहले के नहीं हो सकते हैं। शीघ्र धर्म के प्रति घृणा का भाव और वैदिक धर्म के प्रति पुनः प्रेम आचार्य शंकर के युग की देन है। भवभूति की कृति मालतीमाधव और विशालदत्त का मुद्राराक्षस इसके प्रमाण हैं।

^१ मालतीमाधव के मध्यखण्ड प्राकृत में

^२ उत्तर रामचरित ६/६

३—भवभूति से प्रयुक्त प्रचलाकिन् और मीकुनि आदि शब्द धमर-
कोश में नहीं हैं। अतः भवभूति प्रमासिद्ध के उपरान्त हुए हैं। क्योंकि
पाँचों क कोशों में यह शब्द है।

इन सब प्रमाणों के आधार पर भवभूति ७वीं शती के अन्तिम
भाग में सिद्ध होत है। रमेशचन्द्र दत्त 'एनशियन्ट इण्डिया' में लिखते
हैं—

‘भवभूति ओ श्रीकण्ठ भी बड़े जाने थे, विदर्भ में पैदा हुए किन्तु
ग्रीष्म ही कन्नौज साम्राज्य में आगए। उनका प्रकृति प्रेम प्रद्वितीय
और विगिष्टता बाल है। वह कवि कला और नाट्य कला के जाना
थे। वह अधिक दिनों तक कन्नौज के यशोधर्मन का मुख न उठा सके।
काशमीर का नायिकादित्य यशोधर्मन को हराकर उन्हें अपने साथ
ले गया।’

भवभूति की कृतियाँ और उनका समय क्रमः—

महाकवि भवभूति के तीन नाटक महाभोर चरित, उत्तर रामचरित
और मालती माधव सर्वसाधारण में प्रसिद्ध हैं। त्रिवार का विषय यह
है कि क्या उन्होंने और कोई रचना की है या नहीं? इन प्रश्न के
उपलिप्त हान का कारण है—भवभूति के नाम से लगभग एक दर्जन
पद्यों का सुभाषित संग्रहों में प्राप्त होना, जो संस्कृत के प्राप्त तीनों,
नाटकों में नहीं प्राप्त होते हैं।

शाराधर^१ ने भवभूति के नाम से दो श्लोकों का उल्लेख
किया है।

‘निबन्धानि यथानि यदि नाट्यस्य काक्षतिः ।

मिच्छुकत्वा विनिक्षिप्त. किमिच्छनोर्यो भवेत्तत् ॥१॥

‘अलिपटलैरनुयातां महदय हृदय उग्रं विलम्पन्तीम् ।

मृगमदपगिमल लहरी मनोर किं पामरेषु रे किरमि ॥२॥

^१शाराधर पद्यान, पीटर्सन सम्करण ७/२ पृ० १४६

इन श्लोकों में से कोई भी श्लोक भवभूति के नाटकों में नहीं मिलता है। इन दो श्लोकों में से प्रथम श्लोक—अन्य ६ श्लोकों के साथ जल्हण ने अपनी सूक्ति मुक्तावली में मालतीमाधव नामक लेखक के नाम से उद्धृत किया है। किन्तु निर्णय सागर के मालतीमाधव की सूक्ति विज्ञप्ति में ऊपर के दो श्लोकों में से द्वितीय पद्य दोष ६ पद्यों के साथ ले लिया गया है। जल्हण द्वारा उद्धृत ७ श्लोक सारमधर ने अपनी पद्धति में ले लिये हैं किन्तु एक पद्य को भवभूति के नाम से उद्धृत किया है। दोष पद्यों के लेखक के विषय में ये मीन हैं। गदाधर भट्ट द्वारा रचित 'रसिक जीवन' में भी भवभूति के नाम से दो पद्य उद्धृत हैं। १० क तो "नित्यतानि पद्यानि०" और दूसरा "किं चन्द्रमा प्रत्युपकार निष्पद्य कोपि गोभि कुमुदावबोधनम्। स्वभाव एवोन्नत चेतसा सत्ता पणोरकार-यमन हि जीविनम् ॥"^१ जल्हण प्रथम सुभाषित संग्रहाकार हैं जिनका समय १२४७ ई० है। इनकी बात अधिक विश्वसनीय है। जल्हण ने भवभूति और मालतीमाधव दो पृथक्, पृथक्, लेखक स्वीकार किए हैं। उस प्राचीन युग में ऐसे नाम के कवि होते भी थे। जैसे 'निद्रादग्नि', उत्पलावल्लभ, सीतारत्न इत्यादि। मालतीमाधव नामक कवि की कोई बड़ी कृति न होने से कुछ समय बाद लोग उन्हें भुला बैठे और जब मालतीमाधव के नाम से पद्य मिलते तो भवभूति को मालतीमाधव समझकर उन पद्यों को भवभूति का कहने लगे। यही कारण है कि सूक्ति संग्रहों के बहुत से पद्य, जो भवभूति के नाम से उद्धृत हैं, भवभूति के नाटकों में नहीं मिलते हैं। भवभूति ने अन्य कोई ग्रन्थ रचा है—इस सिद्धान्त को इन पद्यों के बल पर नहीं माना जा सकता है। डा० भाण्डारकर आदि^२ का भी यही कहना है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट निकला कि भवभूति रचित केवल तीन नाटक हैं, जो हमें सुलभ हैं। कोई कृति और भी हो सकती है, जो

^१ रसिक जीवन ३/६३

^२ मालतीमाधव—इन्द्रीकरण

हमें प्राप्त नहीं है, किन्तु उसने संकेत भी प्राप्ताधिकरण से हमारे पास नहीं है ।

महावीरचरित कवि की प्रथम रचना है । इसमें बना और अभिव्यञ्जना दोनों निसार पर नहीं है । नाटकीयता का भी विकास नहीं हुआ है । भाषा, भाव, शैली और संविधान (टेक्नीक) सभी दृष्टियों में महावीरचरित प्रथम रचना मिथ्य होती है । राम के जीवन का पूर्वाध्व इसमें चित्रित है और उत्तरार्ध उत्तररामचरित में । इसमें यह भी सिद्ध होता है कि महावीरचरित प्रथम रचना है और उत्तररामचरित द्वितीय । वीरचरित में कवि संकेत करता है : —

"प्राचेतसो मुनिवृषा प्रथमः कवीना

यत् पावनं रघुपतेः प्रणिनाय वृत्तम् ।

भक्तस्य तत्र समरंसत मेऽपि याचस्तत्

मुप्रमन्नमनसः कृतिनो भजन्ताम् ॥

'समरंसत' पद से सिद्ध होता है कि जब वीरचरित अभिनीत हुआ तब तक उत्तरचरित भी प्रायः पूर्ण हो चुका था । क्योंकि कवि की वाणी अब अधिक रामचरित में फली नहीं रहना चाहती थी । उधर उत्तर के भी अन्त में कवि कहता है —

"पापमभ्यर्च पुनाति यर्घयति च श्रेयांमि सेर्यं कथा

माङ्गल्या च मनोहरा च अगतो मातेव गङ्गेश च ।

वाल्मीकेः परिभावयन्त्य भिनयैर्विग्न्यस्त रूपां युधाः

शब्दत्रहाविद परिणतप्रज्ञस्य बाणी मिमाम् ॥^१

जिससे सिद्ध होता है कि कवि शब्दा और भक्ति के साथ राम कथा का ज्ञान करना चाहता था । इसके लिए उसने नाटक का रस चुना । पूरी रामकथा का ज्ञान कर चुकने के बाद ही वह मातलीमाधव प्रकरण में हाथ लगा देगा, ऐसी सम्भावना का स्थान नहीं है ।

^१—उत्तररामचरित, ७/२३—विद्यासागर संस्करण

डा० भाण्डारकर और उनके अनुकरण पर डा० वेलवलकर भी उत्तर-रामचरित को अन्तिम रचना स्वीकार करते हैं। उनका कहना है कि कवि जब प्रौढ प्रतिभा की चरमसीमा पर या तब उत्तररामचरित का प्रणयन उसन किया है। विन्तु प्रतिभा की प्रौढता और पूर्णता लेखन का अन्त नहीं करा देती प्रत्युत और भी आगे बढ़ाती है। इससे वृद्धावस्था ही मूचि न हो यह कोई सिद्धान्त नहीं है ज्ञान वृद्धत्व और प्रौढत्व वय की अवस्था नहीं रहता है। इससे सिद्ध होता है कि उत्तररामचरित के बाद कवि ने सामाजिक और लौकिक प्रकरण का निर्माण किया जो उसकी कल्पना शक्ति की उपज है।

वीरराघव, वेलवलकर आदि 'वाल्मीके' के स्थान पर 'तामेता' और 'परिणतप्रज्ञस्य' के स्थान पर 'परिणतप्राज्ञस्य' पाठ देते हैं,¹ जिसके कारण उन्हें भ्रम हुआ है। परिणत प्रज्ञस्य और शब्दब्रह्मविद ये दोनों विशेषण महाकवि वाल्मीक के हैं, न कि भवभूति के। क्योंकि भवभूति शब्दब्रह्मविद् थे। वर तो प्रार्थना करते हैं कि —

✓ चिन्त्रेभ्य देवता वाचममृतामात्मन कलाम्²

विद्यासागर एक अल्प-न प्राचीन हस्तलिखित प्रति जो उनके पास थी-के बल पर "वाल्मीके परिभावयन्तु" और 'परिणतप्रज्ञस्य' पाठ देते हैं। व्याकरण और तर्क की कसौटी पर ठीक है। क्योंकि 'वाल्मीके' के स्थान पर 'तामेताम्' पढ़ने पर वाक्य ऐसे बनेगा— 'सा इयं कथा ताम् एताम् इमावाणी परिभावयन्तु।' ये दो वाक्य हैं। इनमें 'सा' शब्द किसी प्रसिद्ध और परोक्ष वस्तु की ओर संकेत करता है और 'कवे' परिणत प्रज्ञस्य' में कवे शब्द अनुपस्थित वस्तु की सन्निधि हमारे मस्तिष्क के सामने प्रस्तुत कर देता है, - ऐसी दशा में जब परोक्षता न रह गई और प्रसिद्ध पहिले सूचित हो है, (सा शब्द से) तो 'ताम्' का दूसरे वाक्य में क्या प्रयोजन है? यह सिद्ध नहीं हो पाता और

¹—उत्तर०७/२१

²—उत्तर०१/१

वह चिन्त्य हो जाता है । साथ ही द्वितीय वाक्य में 'तामेनाम' में एत में को 'एव' प्रत्यादेश होजाना चाहिए था । क्योंकि ताम्, एनाम और इनाम एक ही अभिव्यक्त में मढ़े और कलाकार की कभी सूचित करते हैं । और वाक्य को भी असुन्दर करदेते हैं । जब हम बाल्मीके 'यह पाठ रखते हैं और वाक्य ऐसे बनेगा— साइय कथा । इमा वास्वीक वाणी परिभाषयन्तु' प्रत्येक सहृदय और विचारक यही पाठ उपयुक्त समझेगा । भाण्डारकर साहूब का परिणताम आदि के वलपर उत्तर रामचरित को अन्तिम रचना सिद्ध करना असंगत है और मालतीमाधव ही अन्तिम रचना सिद्ध होती है ।

मालती माधव की सौली उत्तररामचरित की अपना निर्मल और विशेष आकर्षक ही है । सौली स व्यक्ति की प्रौढता आती है सौली के मजने में समय लगता है । वह जायु की बुद्धता के साथ २ प्रयास स मिलरही है । सौली का आकर्षक होना उसका सबसे बड़ा गुण है । मालती माधव की सौली उसे अन्तिमकृति सूचित करती है ।

उत्तररामचरित की प्रस्तावना में त्रुटि है जो मालतीमाधव में दूर कर दी गई है । सूत्रधार नान्दी आदि के पश्चात् कहता है—

“एषो ऽस्मि कार्यवशात् आयोध्यक ” सवृत (समन्तादवलोक्य) भो भो, यदा ठाढदत्र ।” यह भो भो आयोध्या नगरवासी कह रहा है, सूत्रधार ने जिसका ही प्रतिनियित्व किया है । यह वाच्य पूर्ण है । क्योंकि प्रस्तावना 'सवृत' क साथ समाप्त हो जानी चाहिए । अब तो थक (दृश्य) प्रारंभ है । कवि के द्वारा अधिक सुन्दर दृश्य से रचना विधान यों हो सकता था—“एषोऽस्मि कार्यवशात् सवृत ।” (परिक्रम्य निष्क्रान्त) तत प्रविशति कश्चिदायोध्यक (समन्तादेव लोच्य) भो भो । मालतीमाधव में कवि ने ऐसा ही किया है । नान्दी आदि के पश्चात्—‘सूत्रधार— बाढम् । एषोऽस्मि कामन्दकी सवृत । नट—अहमप्यवलोकित्वा । (इतिपरित्रम्य निष्क्रान्तौ) ॥ प्रस्तावना ॥

तत परिवृत्य रक्तपट्टिकनेपथ्ये कामन्दक्यवलोकिते प्रविशत ।”

यह बियानक्रम ठीक है। उत्तररामचरित की त्रुटि मालतीमाधव में हटा दी जाने से मिट्ट है कि यह बाद की रचना है।

संस्कृत नाटककार परंपरा से सदा नाटक के प्रारम्भ में दर्शकों के लिए एक या दो शब्द अत्यन्त नम्रता में अनुगृह्य और पक्षपात के लिए कहते थे। महावीर चरित में भवभूति कहते हैं—

“यद्ययान कवेः काव्यं सा च रामाश्रया कथा।

लब्धश्च याम्य नित्यन्द निष्पेष निरूपो जनः॥

इस पद्य में लब्धक अपनी, अपने वस्तु और दर्शकमनुदाय की प्रशंसा करता है। वह प्रमिद्धि, अपनी साम्यता तथा आपक्षित सहृदय प्रशंसा के प्रति ऊँची महत्वाकांक्षा रखता है। किन्तु अनचाहा होता है। उत्तररामचरित में दर्शकों (सामाजिकों) की प्रशंसा आदिना दूर रही वह कहता है—

“यया म्राणा तथा वाचा साधुत्वं दुर्जनो जनः” । १/५
कवि की यह शब्दावली निराशा और अनुरसाह की सूचक है। बीरचरित की ऊँची महत्वाकांक्षा महा नष्टप्राय सी है—क्योंकि जनता ने बीरचरित का आदर नहीं किया। यही कारण है कि कवि दर्शकों के प्रति अच्छा या बुरा कुछ भी नहीं कहता है। वह पूरी सचाई और लगन से उत्तररामचरित की रचना में एकनिष्ठता से लगा हुआ है। किन्तु इसका भी परिणाम अनुकूल नहीं होता है। परिणाम स्वरूप मालतीमाधव में कवि अत्यन्त खोक्र उठता है और जोर मरे स्वर से सामाजिकों की खरी थोड़ी मुता देता है—

‘येनामनेचिद्रिहः प्रथयन्त्यवज्ञां

आनन्तिते किमपितान् प्रतिनैप यत्नः ।

उत्पत्त्यनेऽस्ति मस्यकोऽपि ममान धर्मा

कालोह्यं निगबिर्विपुला च धरणी ॥” १/८ ॥

कवि अपने और सामाजिकों के जन्म और अध्ययनादि के बीच अन्तर अभिव्यक्ति करते हुए कहता है कि मेरा बश—

ते श्रोत्रियास्तत्त्व विनिश्चयाय—

भूरिश्रुतं शाश्वतमाद्रियन्ते ।

इष्टाय पूर्ताय च कर्मणोऽयान्—

दारानपत्याय ततोऽथमायु ॥ १/७

सामाजिकों के प्रति उत्तरोत्तर कवि का बदलता दृष्टिकोण ध्यान देने योग्य है। नीर में भादरसूचक, उत्तर में उदासीन और अन्त में मालती में जोषपूर्ण।

कुछ लोगों का यह कहना कि बीरचरित में अनुकूल प्रशंसा न मिलने से द्वितीय रचना मालतीमाधव में कवि जोषित हो उठा है। किन्तु यह धारणा ठीक नहीं, क्योंकि प्रथम प्रवास में असफल होने पर कोई हठना जोषित नहीं हो सकता है। हा वह कुछ उदासीन हो सकता है। मालतीमाधव की प्रशंसा यदि द्वितीय उद्योग में होगई होनी तो कवि कभी भी उत्तररामचरित में सामाजिकों के प्रति उदासीन न होता, प्रत्युत जोषित दृष्टिकोण में परिवर्तन कर पुनः प्रशंसा करता, जैसा कि परंपरा थी। साथ ही यदि मालती की भी प्रशंसा सहृदय न कर सके होते तो उत्तर में लेखक को और भी भयानकता के साथ दर्जनों पर या पाठकों पर प्रहार करना था। किन्तु ऐसा नहीं हुआ जिससे सिद्ध होना कि उत्तररामचरित द्वितीय रचना घौड़ मालतीमाधव अन्तिम रचना है।

भरतमुनि का कहना है कि जिस प्रकार अगो से रहित मनुष्य कुछ भारम करने में असमर्थ होता है उसी प्रकार अगो से रहित काव्य प्रयोग योग्य कभी नहीं हो सकता। जो काव्य हीन अथवा बाता भी हो किन्तु उचित रूप में अगो से युक्त हो तो प्रदीप्त अगो के कारण ही शोभा को प्राप्त हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं। यदि कोई काव्य उच्च कोटि के अर्थ बाता भी हो किन्तु अगो से रहित होने पर प्रयोग हीनता के कारण सहृदयों के मन प्रसादन में वह समर्थ नहीं होता है।

अन्य कवि को चाहिए कि रस और सविधान के अनुसार उचित रूप सन्ध्यगो का प्रयोग अवश्य करे।' भवभूति का उत्तररामचरित उच्चतम श्रय और भाव वाला होन पर भी नाट्य नियमो-सन्ध्यगो आदि के प्रति उपेक्षा रखने के कारण जनप्रिय न हो सका। नास्तिकारी कवि, जिनमें हर्ष आदि की संली के प्रति विरोध करके नाट्य नियमों से स्वतंत्र नैमगिक नाटक रचना की थी, परंपरा की अभ्यासिनी जनता के प्रति प्राधित हो उठा और मालती में उसने अपने क्रोध को स्पष्ट शब्दों प्रकट कर दिया।¹ इसके पश्चात् उसने अपनी इस कृति में सन्ध्यगो, श्रयप्रकृतियाँ, कार्यविस्थाओं आदि सभी का सम्यक् विधान किया है। यन्तु भी कल्पनाप्रमूढ रोमान्टिक भी है। परिणाम आशा के अनुकूल द्वारा भी कवि जनता में प्रसिद्ध हुए। राजशेखर और बाणतिराज की उक्ति का इसमें प्रमाण है।

कहलण की राजतरंगिणी में अनुसार काशमीर नरेश ललितादित्य कर्पोज नरेश यशोवर्मा को हराकर भवभूति को अपने साथ ले गया था। उसने ललितपुर में आदित्य (मार्तण्ड) मन्दिर बनवाया और कर्पोज की प्राप्त संपत्ति को उस मंदिर को दान में दे दिया। भवभूति ने मालतीमाधव के प्रारम्भ में आदित्य की प्रार्थना उनके वैभव वर्णन के साथ की है।

उपयुक्त विवेचन के पश्चात् अब हम भवभूति के तीनों नाटकों में प्राप्त समान दृश्यों और वर्णन स्थलों पर विचार करेंगे कि कौन से पद्य और स्थल प्रथम निमित्त हुए और वहाँ से दूसरे ग्रन्थ में रलदिए गए। इस प्रकार भी ग्रन्थों के रचना क्रम का बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त हो जायगा।

महावीर चरित, उत्तररामचरित और मालती माधव के ३१ पद्य समान रूप से सभी में प्राप्त होते हैं। जिनमें १३ पद्य महावीर और उत्तर चरित में समान रूप से हैं और १८ पद्य उत्तररामचरित और

¹—मा०भा० १/८

मानवीमायव में समान रूप में हैं । महावीरचरित और मानवीमायव का कोई भी पद एक दूसरे में नहीं मिलता है । केवल दो श्लोक ऐसे हैं जो दोनों ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं ।

विचार का विषय यह है कि कहीं से किस ग्रन्थ में पद उठाकर दूसरे ग्रन्थ में रखा गया है ? एक लेखक के द्वारा रचित विभिन्न ग्रन्थों में समानता का प्राप्त होना स्वाभाविक है किन्तु वहीं पर थोड़ा बन्धु बनाउ, दूसरे स्थान से किसी दूसरे स्थान पर भी पढ़ावा दी जायो है तो दूसरा ज्ञान दिता नहीं रहता है क्योंकि पूर्व स्थान में वह धरती नैतिकता का कारण उत्पन्न नहीं होती है, जबकि दूसरे स्थान पर वह स्वाभाविक और उत्पन्न नहीं होती है ।

महावीरचरित और उत्तररामचरित का समान श्लोक महावीर चरित में विद्वत् उत्पन्न स्थानों में है तथा उत्तररामचरित और मानवी मायव में एक समान प्राप्त होने वाले पद तो उत्तररामचरित में ही ठीक स्थानों पर स्वाभाविकता के साथ हैं । मानवी मायव में तो वे खटखटे से लगते हैं । महावीर चरित के श्लोकों की समानता उनकी रचना समानता और उत्तर रामचरित और मानवी मायव के पदों की पक्षिक समानता इनकी रचना समानता को व्यक्त करती हैं । महावीर-चरित की प्रारम्भिक रचना है इस पर किसी भी विचारक का विवाद नहीं उठे मानवीमायव अन्तिम रचना है इस बात पर भी किसी का मतभेद न होना चाहिए ।

मानवी मायव के नवम अक्ष का पर्वत वर्णन उत्तर के मोक्षवरी तीरके पर्वत वर्णन के पूर्व रचित होने की स्पष्ट सूचना देता है ।
 "स्मारदन्ति मोक्षवरी मुखरित भुवः दक्षिणायन नृवर्णम्" ।
 उत्तररामचरित का वर्णन उत्पन्न और स्वाभाविक है । मानवी मायव में दोनों प्रत्याक्षनी और इस पर यह वर्णन उत्पन्न और स्वाभाविक है । उत्तर रामचरित के कारण उस का प्रभाव मानवी मायव के ऊपर

¹—मा० मा० १/११ के बाद का पद पृ० २०५ । निर्गुणदास

शृगार रम का नाटक होने पर भी सर्वत्र छाया हुआ है। माधव विरह और रोदन राम के समान ही है। अतः माननी माधव उत्तर रामचरित में वाद की रचना है हम यहाँ पर पाठकों के लिए कृतियों में समानता के माय प्रान्त पत्रों का उल्लेख किए देते हैं।

अध्याय ३

37285

६. भवभूति कृत ग्रन्थ-त्रयगत सदृश पदसंग्रह महावीर चरित और उत्तररामचरित

१ विश्वामित्र—

[२ - 251 / 718]

तेषामिन्द्राणां शायतो बृद्धः सौरध्वजा नृपः।
शास्त्रवल्क्यो मुनिर्यस्मै ब्रह्म पागयणं जगौ ॥ म० च० १/१४

मन्मथती—

एष य श्लाघ्य मन्मथो जनकानां कुलोद्बद्धः।
शास्त्रवल्क्यो मुनिर्यस्मै ब्रह्म पागयणं जगौ ॥ ३० च० ४/६

२ राजा—

चूडाचुम्बितकङ्कपत्रमभितमूर्णद्वयं पृष्ठतः।
मम्मन्त्रोक पवित्र लाब्धनमुगेवत्ते त्वचं रौरवीम्।
मौढ्या मेम्वलया नियन्त्रितमयो धामश्चमाञ्जितकम्।
पाणौ कामुर्कमक्षमूत्रवलयं दण्डोऽपरः पैपलः ॥ म० च० १/१८

जनक—

यही श्लोक ज्यों का त्यो ३० च० ४/२०

३ विश्वामित्र—

अपिप्रवृत्तयज्ञोऽमौ विदेहाधिपतिः मुन्नी।
गौतमश्च शानानन्दो जनकानां पुरोहितः ॥ म० च० १/१६

तन्मण—

सर्वचिनो वशिष्ठार्त्तनेपनातस्तवा गति ।

गौतम उ० च० ४/२०

४ विश्वामित्र—

ब्रह्माभ्यो ब्रह्महिताय तप्त्वा परस्मदहन् शरणा तपामि ।

एतान्यन्शन्गुरव पुराणा स्वान्येष तेनासि तपोमयानि ॥

म० च० १/४७

राम—

यद्दी श्लोक ज्यो का त्यो

उ० च० १/१५, ६/१५

५ राजा—

जनकाना रघूणा च सम्बन्ध कस्य न प्रिय ।

यत्र नाता गृहीता च कल्याणप्रतिभूमयान् ॥ म० च० १/४७

राम—

.. .. .

.. .. .

स्वय कुशौकतन्त्र ॥ उ० च० १/१७

६ जामदग्न्य—

ब्रातु लोकानिब परिणत काययानस्त्रये ।

छात्रोद्यम अित इव तनु ब्रह्म कोशस्य गुण्यै ।

सामर्थ्यानामिय समुन्य सचयो वा गुणानाम्

प्रादुर्भूय स्थित इव जगत्पुण्य निर्माणराशि ॥ म० च० २/४१

राम—

.. .. .

ज्यो का त्यो केवल 'आविर्भूय' ॥ उ० च० ६/६

७ जामदग्न्य—

अमृताध्मात्तनीमृतस्निग्धमहननस्य ते ।

कुठार कम्बुकलस्य कष्ट कलटे पतिष्यति ॥ म० च० २/४६

राम—

.. .. .

परिष्वङ्गाय वात्सल्याद्यमुत्कल्यते जन ॥ उ० च० ६/२१

८ जनक—

ज्याजिह्वा बलियितोत्कटकोटि दण्ड—

मुग्गारिघोरघन घर्घरघापनेतत् ।

प्राप्त प्रसक्त हसन्तकमक्रयन्

जृम्भाविहम्बिविकटोन्मस्तु चापम् ॥ म० च० ३/२९

तव—

ज्यों का त्यों मुद्भूति केवल परिवर्तित है । उ० च० ४/२६

९ दशरथ—

निसर्गत पवित्रस्य किमन्यन् पावन तव ।

तीर्थोदक च बहिरच नान्यत शुद्धिमहंत ॥ म० च० ४/२७

राम—

उत्पत्ति परिपूताया किमस्या पावनान्तरै ।

तीर्थो ज्या का त्यों ॥ उ० च० १/१३

१०—विश्वामित्र—

किं त्वनुष्ठान नित्यत्वं स्वात्तन्त्र्यमपकर्षति ।

संकटा ह्याहिताग्नीना प्रत्यवायै गृहस्यता ॥ म० च० ४/३३

राम—ज्यों का त्यों

॥ उ० च० १/८

११—जनक—

पुत्र सक्रान्तलक्ष्मीकैर्यद्वृद्धे द्वाकुभिर्धृतम् ।

त्वयातत्पीर कण्ठेन प्राप्तमारण्यक व्रतम् ॥ म० च० ४/५१

लक्ष्मण—

धृत बाल्ये तद्वार्येण पुण्यमारण्यक व्रतम् ॥ उ० च० १/२२

१२—जटायु—

चतुर्दश सहस्राणि चतुर्दश च राक्षसा ।

प्रयश्च दूषण खर त्रिमूर्धानो रणे हता १ ॥ म० च० ५/१३

शम्भूक—ज्यों का त्यों

॥ उ० च० २/१५

१६—श्रमणा—

इह समदशकुन्वा क्रान्तवानोर मुक्त
प्रसव सुरभि शीतस्त्रच्छनोया वहन्ति ।
फल भर परिणाम श्याम जम्बू निकुञ्ज
स्पलन मुखर मूरिस्त्रोतस्रो निर्मरिष्य ॥ म०च० ५/४०
और भी

दधति कुहरभाजामत्र मल्लूक यूनाम्
धनसरति गुरुणि स्थान मम्बूकृतानि ।
शिशिरकटुकपाथः स्त्यायते सल्लकीनाम्
इभदलित विशीर्णं प्रन्थिनिध्यन्त गन्ध ॥ म०च० ५/४१
शम्बूक—ज्यों का त्यों दोनों पद्य - केवल विरुद्ध ॥ उ०च० २/२०, २
सौदामिनी—दधति कुहर . ज्यों का त्यों । मा०मा० १/३
माधव—

फलमर परिणाम श्याम जम्बू निकुञ्ज ।
स्पलन सनु तरंगामुत्तरेण धवन्तीम् ॥ मा०मा० ६/२४
नोट—केवल यही स्थल म०च०, उ०च० और मा०मा० के सवृण
है । नहीं तो म०च० का कोई भी मश मा०मा० में नहीं प्राप्त
होता है ।

उत्तर रामचरित और मालतीमाधव—

१—राम—

नैसर्गिकी सुरमिणः कुसुमस्य सिद्धा ।
मूर्ध्निस्थितिर्नचरणैरवताडनानि ॥ उ०च० १/१४
माधव..... सुसलैर्वतकुट्टनानि ॥ मा०मा० ६/४१

२—राम—

एतस्मिन्मदकलमल्लिकाक्ष पद्मा
व्याधूत स्फुर दुरु दण्ड पुरदरीकाः ।
वाष्पाम्भः परिपतनोदुगमान्तराले
संदृष्टाः कुवलयिनो मयाविभागाः ॥ उ०च० १/३१

मकरन्द

ज्यों का त्यो

.....

दृश्यन्ताम विरहितश्रियो विभागाः ॥ मा०मा० १/१४

३-राम-

जीवन्निव ससाध्वसग्रम स्वेदविन्दुधि कण्ठमर्प्यताम्
बहु रैन्द्रमयूख चुम्बित स्यन्दिचन्द्रमणि हारविभ्रमः ॥

उत्तर०१/१४

माधव-जीवन्निव समूहसाध्वमस्वदे

..... ज्यों का त्यो

..... ॥ मा०मा०मा०

४-राम-

म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि-

संतर्पणानि सकलेन्द्रिय मोहनानि ।

पतानि ते सुवचनानि सरोरुहाणि-

कृष्णामृतानिमनसरव रसायनानि ॥

उत्तर०१/३६

माधव-.....

ज्यों का त्यो

।

आनन्दनानि इन्द्रयैक रसायनानि दिष्ट्या-

ममाप्यधिगतानि बचोऽमृतानि ॥

मा०मा०६/५

५-राम-

गुञ्जत्कुञ्ज कुटीर कौशिक घटाधुक्काखत्कीचक-

स्तम्बाढम्बर मूक मौडुलिकुलः कौञ्चानिपोऽयं गिरिः ॥

उत्तर०२/२६

माधव-

गुञ्जत्कुञ्ज कुटीर कौशिक घटाधुक्कार संवेस्तित-

मन्दत्फेरव अष्टधात्कृतिमृतप्राग्भारभोमैस्तटेः ॥

मा०मा०२/१६

६-राम-

परिपाण्डु दुर्वलकपोलसुन्दरं दधतोविलोल कवरीकमानम् ॥

उत्तर०३/४

कामन्दकी—

परिपाण्डुपांसुलकपोलमाननदधती मनोहर तरत्वमागता ॥

मा०मा०२।४

७—राम—

लोलोत्प्लातमृणाल काण्ड कवलच्छेदेषु संपादिता.

पुण्यत्पुष्करवासितस्य पयसो गच्छन्त्य सक्रान्तय ।

सेकः शीकरिणाक रेणुविहितः कामविरामे पुनः

यत्स्नेहादन्नरालनालनलिनी पत्रातिपत्र धृतम् ॥

माधव-नस्नेहाद् केवल ज्यों का त्यों हैं ॥ मा०मा०६।१४

८—राम—

उत्तर०

दलति हृदयं शोकोद्वेगाद्विघातु न भिद्यते

बहति धिक्लःकायो मोहं न मुञ्चति चेतनाम् ।

ज्वलयति तनूमन्तर्दाहकरोति न भस्मसात्

प्रहरति विधिर्ममच्छेदी न कृन्तति जीवितम् ॥

उत्तर०३।११

माधव-दलति हृदयं गाढोद्वेगम्... शोप ज्यों का त्यों ॥

मा०मा०६।१२

९—राम—

हा हा देवि स्फुरति हृदयं ध्वसते देहवन्धः

शून्यं मन्ये जगदविरलज्वालमन्तर्ज्वलामि ।

सीदन्नन्येतमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा

विष्वक् मोहं स्थगयति कथं मन्दभाग्यं करोमि ॥

उत्तर०३।३८

मकरन्द-मातर्मोतर्दलति... जगदविकल० ।

शोप ज्यों का त्यों... ॥मा०मा०६।२०

१०—तमसा—वासन्ती—

तववितरत् भद्रं भूयसे मंगलाय ॥ उत्तर०३।४८

सूत्रधार—

भद्रं भद्रं वितर भगवन् भूयसे मंगलाय ॥ मा०मा०१।५

११—जनक—

अनियत रुदित स्मितं विराजम्

कतिपय कोमल वन्त कुङ्कुमलाग्रम् ।

वदन कमलकं शिशोः स्मरामि

स्वल्पवस्त्रमञ्जु ममङ्गु जल्पितं ते ॥ उत्तर०४।४

कामन्दकी—

शेष ज्यों का त्यों केवल सुमुग्ध ॥ मा०मा०१०।२

१२—कञ्चुकी—

सुहृद्विष प्रकट्य सुरप्रदाम्

प्रथममेक रसामनुपूलनाम् ।

पुनरकाण्ड विवर्तन दारुणः

परिशिनष्टि विधिर्मनसोरुजम् ॥ उत्तर०४।१५

माधव—

सारा ज्यों का त्यों केवल प्रविशिनष्टि ॥ मा०मा०४।७

१३—चन्द्रकेतु—

व्यतिकर इव भीमस्ताम सो वैद्युतरश्मि

प्रणिहितम पिच्छतुर्ग्रस्त मुक्त हिनस्ति ॥ उत्तर०५।१३

मकरन्द—“ज्यों का त्यों” ।

क्षणमु पहत चच्चूर्तिरुद्भूय शान्तः ॥ मा०मा०६।५४

कामन्दकी—“ज्यों का त्यों” ॥ मा०मा०१०।८

१४—राम—

व्यतिपजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतुः

न सत्तु बहिरुपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते ।

विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकम्
 द्रवति च हिम रश्मा बुद्गते चन्द्रकान्तः ॥ उत्तर०६।१२
 मकरन्द—ज्यो का त्यो ॥ मा०भा० १।२७

१५—मार्गो रथी—

को नाम पाकामिमुखस्य जन्तुः
 द्वाराणि दैवस्य पिपातुमीप्से ॥ उत्तर०७।४
 साधव—ज्यो का त्यो ॥ मा०भा० १०।१३

चतुर्थ अध्याय

७ भवभूति की कथावस्तु के स्रोत और रामकथा

महा कवि भवभूति ने अपने नाटकों के लिए इतिहास प्रसिद्ध कथानक राम कथा को चुना है। कवि के महावीर चरित और उत्तर रामचरित इन दोनों की कथा वस्तु ऐतिहासिक हैं और मातृ-माघव की कवि कल्पित। भवभूति महावीर चरित में स्पष्ट करते हैं—
'प्राचेत सो मुनिवृषा प्रथम' कवीनायत्

पावन रघुपते प्रणिनाय भूतम् ।
भक्तस्य तत्र समरंसत मे ऽपि धाच स्तत्
सुप्रसन्न मनस कृतिनो भजन्ताम् ॥

तथा उत्तर के भी अन्त में—

पाप्मभ्यश्च पुनाति धर्मेयतिश्च श्रेयांसि सेयंकथा
माङ्गल्या च मनोहरा च जगतो मातैव गंगैव च ।
बाल्मीके परिभावयन्त्वभिनयैर्विम्यस्तरूपां ध्रुवा
शब्दमहा विद, परिणतप्रज्ञस्य वाणो मिमाम् ॥

कवि राम कथा के प्रति यद्वा से पूर्ण है और यदि कवि की ओर उसके सुस्पष्ट संकेत हैं। भवभूति के कथानक का सूत्राधार रामायण महाकाव्य है इसमें सन्देह नहीं है। मुरारी कवि का कहना वस्तुतः सार्थक है—

“अहो सकलक विसर्ग साधारणो

रत्नियं बाल्मीकीया सुमापिता” ।”

किन्तु उत्तर रामचरित के कथानक में पद्मपुराण के पाताससण्डस्थ रामकथा का पूर्ण प्रभाव है, जिसके कारण कवि उत्तर

के कथानक के लिए उनका ऋणी है। कवि के नाटकों को कथावस्तु और घटना चक्र तथा दृश्य विधान आदि में भास और कालिदास की कृतियों तथा महाकाव्यों का बहुत प्रभाव है, जिसका हम क्रमशः विवेचन करेंगे। अभी हम कवि के कथानक के राम कथा सम्बन्धी पक्ष पर विचार करेंगे। अबभूति पहिले नाटककार है जिन्होंने पूरी राम कथा को नाटकीय सज्जे में ढाल कर वह प्रमुखता प्रदान की है कि जिसके प्रभाव से — कुन्दमाला, धामरामायण, प्रसन्नराघव, अनघराघव, हनुमन्नाटक आदि न जाने कितने नाटक निमित्त हुए।
राम कथा का इतिहास।

भारत में वाल्मीकि रामायण के चार संस्करण प्रचलित हैं। १-उत्तरी भारत का संस्करण २-बंगाली संस्करण, ३-पश्चिमी संस्करण ४-दक्षिणी संस्करण। इन सभी संस्करणों में मूलकथानक में कोई भी विभेद नहीं है केवल श्लोकों और सर्गों के विषय में अन्तर है। इन संस्करणों में कौन सा संस्करण सबसे प्राचीन है, यह नहीं बताया जा सकता है। रामायण में बहुत से अंग बाढ़ के जोड़े हुए हैं जो कहीं २ पुनर्हक्ति ही करके अपने को प्रकट कर देते हैं तथा उनकी रचना शैली से भी उनकी प्रक्षिप्त भंगता सिद्ध हो जाती है। हम सबई संस्करण से विवेचन करेंगे।

कथानक का जहां तक सम्बन्ध है अबभूति का रामायण विद्वद्वक्त ज्ञान आज की सुश्रुत रामायणों से अन्तर नहीं रखता है।

वाल्मीकीय रामकथा — कौशल देश की राजधानी मयोध्या में राजा दशरथ राज करते थे। उनके यश में मनु, इन्द्राक्ष, तगर, भगीरथ, काकुत्स्थ और रघु ऐसे प्रसिद्ध प्रतापी नुरति हो चुके थे। दशरथ की तीन रानियाँ कौशल्या, सुमित्रा और कंकेयी थीं।

१-इसके लिखने में डा० फादर कामिल ब्लेके के निबन्ध रामकथा और डा० वेल्बल्कर के उत्तर रामचरित के इन्ट्रोडक्शन हावेर्ड सीरज से सहायता ली गयी है।

कोशल्या सब से जेठी और कैंकैयी सबसे अधिक प्यारी थीं। दशरथ ने बहुत दिनों तक समृद्धि के साथ शासन किया। उनके एक पुत्री शान्ता थी, जो ऋष्यशृंग को व्याही थी — अग्नि मित्र सोमपाद को पालन के लिए दे दिया था। शान्ता किस माता से पैदा हुई थी, इसका उल्लेख नहीं है। राजा के कोई पुत्र न था और वे अत्यन्त वृद्ध थे। कुलगुरु वशिष्ठ के कथनानुसार उन्होंने ऋष्यशृंग के नेतृत्व में पुत्रेष्टि यज्ञ किया। जिसके फलस्वरूप उनके चार पुत्र हुए। कोशल से पूर्व की घोर विदेह जनक का राज मिथिला था। जनक बड़े ब्रह्मज्ञानी थे एक बार उन्होंने यज्ञ के लिये पवित्र भूमि की रचना करते हुए हल से पृथ्वी जोती। जिसके फलस्वरूप सीता का जन्म हुआ। सीता भरती की पुत्री थी जनक ने बड़े प्यार से उनका भालन पालन किया। सीता जनक की पुत्री उमिता और जनक के भाई कुशध्वज की पुत्री माण्डवी एवं भृतिकीर्ति के साथ बड़ीं। सीता जब विवाह योग्य हुई तो जनक ने स्वयंवर रचा, जिसमें यह घोषणा की गई कि जो शक्तिशाली पुरुष शिव धनुष को तोड़ डालेगा उसी से राजकुमारी का विवाह होगा। भारत के नरेशों ने पूरी शक्ति भर प्रयत्नशीलता दिखाई पर सफलता किसी को नहीं मिली। एक दिन राजा दशरथ की राजसभा में राजपति विश्वामित्र पधारे। वे निराश्रयी से घेरित थे और अपने यज्ञ के रक्षणार्थ राम और लक्ष्मण को जो दशरथ के जेठे पुत्र थे लेने आये थे। विश्वामित्र का स्थान साधारण न था। दशरथ की बिना अपनी इच्छा के दोनों पुत्र मुनि के साथ भेजने पड़े। राम और लक्ष्मण ने जाकर साइका और बुबाहु के साथ राक्षसों का सहार किया तथा मारीच को समुद्र पार फेंक दिया विश्वामित्र जी का यज्ञ पूरा हुआ। उन्होंने राजकुमारों के ऊपर प्रसन्न होकर सभी अस्त्र शस्त्र विद्यायें जो मन्त्रों से प्रयोग में आती थीं, सिखा दीं, जिनमें जून्मास्त्र प्रमुख थे। राम लक्ष्मण को लेकर विश्वामित्र मिथिला गये। राजा जनक राजकुमारों को देखकर

तथा उनकी धीरता सुनकर अत्यन्त प्रभावित हुए। विश्वामित्र जी की आज्ञा से राम ने धनुष को तोड़ दाता घोर सीता जी से उनका विवाह हो गया। विश्वामित्र के आदेशानुसार जनकों ने दोष हीनों लक्ष्मियों का विवाह दशरथ के दोष तीनों राजकुमारों से कर दिया। दशरथ अयोध्या से, सूचना भेजकर इस अवसर के लिए बुला लिये गए थे। किन्तु यह धानन्द जमदग्नि के पुत्र परशुराम जी के आने से दूर हो गया। वे अत्यन्त क्रोधी और इक्कीस बार दानियों का सहार कर चुकने वाले थे। वे शिव भक्त थे और अपने गुरु के धनुष की राम द्वारा नृपति सुनकर प्रतीकार लेने आए थे। किन्तु एक साधारण युद्ध विद्या प्रदर्शन से राम ने उन्हें प्रसन्न कर दिया और वे बन की लौट गए। चारों राजकुमार राजकुमारियों को लेकर अयोध्या आ गए और १४ वर्ष तक यौवन सुख भोगते रहे। बालकाण्ड यहीं पर समाप्त हो जाता है। रामायण के कुछ हास्यकरण राम के बनकपूर से लौटते ही बन-यमन घटना आयोजित कर देते हैं, किन्तु भवभूति और पद्मपुराण का पातालखण्ड यह नहीं स्वीकार करते हैं।

दशरथ अपने ज्येष्ठ पुत्र राम की इस समय उपयुक्त अवसर समझकर युवराज पद देने का विचार करने लगे और घोषणा कराके तीयारिणी प्रारम्भ कर दी। किन्तु कैकेयी दासी सम्भरा के बहकावे से आकर राजा द्वारा प्रदत्त दो वर लेने का विचार कर उनसे से एक में—अपने पुत्र भरत के लिए युवराज पद और दूसरे में राम के लिए १४ वर्ष का बनवास राजा से मांग लिया। राजा को कैकेयी के बहनों का विश्वास न हो रहा था, किन्तु राम ने परिस्थिति समझकर स्वयं बन मार्ग पकड़ा। उनके साथ उनकी धर्मपत्नी सीता और अनुज लक्ष्मण भी बन की चले। दशरथ ने भी राम के बनयमन के साथ ही स्वर्ग का मार्ग पकड़ा।

भरत जो कि अयोध्या में घटी इन घटनाओं से अपरिचित थे, भरनी ननिहाय में वे वे अयोध्या बुलाए गये और उनसे पिता के

सभी संस्कार करने तथा राज्य स्वीकार करने के लिए कहा गया किन्तु जब उन्हें सब बातें और अपनी माना की करतूत का पता चल जाता है, तो वे अत्यन्त दुःखित होते हैं और पूर्यंतया राज्य का सेना प्रस्वीकार करके, राम को दंडने के लिए वन को चल देते हैं। उनका ध्येय था राम को लौटाकर राज्य मही सौंप देना। भरत राम को प्रयाग वे आगे चित्रकूट में वनवासी का जीवन व्यतीत करते पाते हैं। भरत इन तीनों की दशा देखकर विमूढ़ हो उठते हैं। राम को भरत को देखकर अत्यन्त आश्चर्य होता। किन्तु राम बहुत कहने सुनने पर भी अयोध्या बिना १४ वर्ष पूरे किए लौटना उपयुक्त नहीं समझते हैं और तब तब भरत को राज्य भार समालाने की आज्ञा देते हैं। जनता की भलाई के लिए भरत राम के प्रतिनिधि के रूप अयोध्या का शासन समालते हैं। अयोध्या काण्ड समाप्त ।

इसके बाद राम चित्रकूटसे दक्षिण के घनघोर जंगलों में प्रवेश करते हैं। उन्होंने विन्ध्य के उसपार राक्षसों के जमघट सुनकर उसी ओर को प्रस्थान किया। विन्ध्य में घूमते ही उन्हें विराध राक्षस मिला जिसे उन्होंने मिलते ही मार दिया। इसके बाद बहुत से ऋषियों और मुनियों से मिले। इस तरह से वनवास के उनके १० वर्ष व्यतीत हो गये। आ० बेलबलकर का कहना है कि यह ठीक नहीं है क्योंकि यदि १० वर्ष उनके पहिले ही व्यतीत हो गये गोदावरी के किनारे पहुँचने के, तो पंचवटी में वे कुछ दिनों के लिए कुटी न बनाते जबकि अभी तक नहीं बनाई थी। वे पद्मपुराण की बातें मानते हैं जिसमें १० वर्ष पंचवटी में बिताने के लिए कहा गया है^१। इसके बाद राम और दक्षिण की ओर बढ़ते हुए गोदावरी के किनारे पहुँचते हैं। वहाँ पर जन स्थान में भगस्त्य, सीतामूद्रा और गृध्रराज जटायु के समीप, प्रसवण पर्वत के तट पर पंचवटी में कुटी बनाकर रहने लगे। राम अपनी धर्मपत्नी और भाई के साथ शान्ति का जीवन व्यतीत कर रहे थे, किन्तु उनकी शान्ति

^१-पद्मपुराण ६/२६९

चिरस्थायी न हो सकी । राक्षस राज रावण जो लका का अधिपति था, तथा ससार भर में आतंक फैलाए हुए था, जिसका जन स्थान में उपनिवेश था और सरदूपण तथा त्रिशिर की अव्ययता में १४ सहस्र निशाचरी सेना जो जनस्थान में रक्से था—उसकी विधवा वहिन दूर्पणसा पचवटी में राम के पास आई और मोहित होकर विवाह के लिए प्रार्थना करने लगी । राम ने उसे अनुज लक्ष्मण के पास भेजा और संकेत से उसकी नाक और कान कटवा डाले । वह रोती हुई सरदूपण आदि के पास गई, और पूरी राससी सेना को आक्रमण के लिए लिबा साई । राम और लक्ष्मण ने राक्षसों का समूह संहार कर डाला । राम धनुष में बाण बँटाने के लिए इस युद्ध में तीन पग पीछे हटे थे । दूर्पणसा भाग कर रावण के पास गई और सीता के सौन्दर्य का वर्णन कर सीता के प्रति रावण के हृदय में कामवासना जगा दी । रावण सीता को अपने आधीन करने के लिए मारीच के पास पहुँचा और उसे कथन भुग बना कर साधु वेश में पचवटी जाकर, राम के कनक भुग के पीछे मारने के लिए दौड़ पड़ने पर अकेली सीता का बनातू हरण कर लिया । लक्ष्मण को सीता ने राम की सहायता के लिए भेज दिया था । रावण के मार्ग में जटायु बाधक बना किन्तु मारा गया । राम और लक्ष्मण ने लौटकर कुटी को सीता से दूख देखा । राम अत्यन्त दुःखित हुए । अरण्यकाण्ड समाप्त हुआ । सीता को दूढ़ते हुए राजकुमार पपासर के पास पहुँचे । वहाँ हनुमान के द्वारा मुग्धीव(वानरराज)से उनकी मित्रता हुई । मुग्धीव वानर राज बाली के द्वारा स्त्री और राज्य छीन लिए जाने से उसके डर से यहाँ रहना था । राम ने मुग्धीव के लिए बाली को मारा और मुग्धीव को उसकी स्त्री तथा राज्य वापस लौटा दिया । बाली को राम ने अप्रत्यक्ष मारा था । मुग्धीव ने राम की कृपा के बदले में वानर सेना को सभी दिशाओं में सीता की खोज करने के लिए भेजा विशेष कर अगद, हनुमान और जाम्बवान को दक्षिण दिशा में भेजा, क्योंकि जटायु ने प्राण छोड़ते २ राक्षसों से रावण को करतूत प्रकट कर दी थी । किष्किन्धा काण्ड समाप्त ।

रावण की राजधानी लंका का रत्नक समुद्र था । हनुमान लंका को लाया गए । लंका में अशोकवाटिका में सीता से हनुमान की भेंट हुई । अशोक वृक्ष के नीचे कृष्णकाम्य सीता को रावण तथा राक्षसियाँ सता करके, धमका करके वन में करने का प्रयत्न करती थी किन्तु वे तो पतिव्रता थी । उनकी ओर ध्यान तक भी नहीं देती थी । उनसे न रहने पर हनुमान सीता को राम प्रदत्त मुद्रिका देकर रामका पुरा संदेश कहते हैं और उनसे चूहामणि लेकर अक्षयकुमारादि राजसौ को मारकर लंका में आग लगा वापस लौट आते हैं । सुन्दरकाण्ड समाप्त ।

राम सीता का समाचार पाकर शीघ्र ही लंका पर आक्रमण के लिए चल देते हैं । उनके साथ मे ऋद्धबागरों की सेना है । पूरी सेना के साथ राम समुद्र के किनारे पहुँचते हैं और नलनील को द्वारा समुद्र में सेतु का निर्माण कराते हैं । लंका पर चढ़ाई होती है और युद्ध में सर्वान्व रावण का सहार होता है । रावण का भाई विभीषण राम के पक्ष में जाता आया था । इस युद्ध की दिन सख्या में सभी सत्करणों में मतभेद है । विभीषण लंका के राजा होते हैं और सीता राम को प्राप्त होती है । राम जनता के विश्वास के लिए सीता की अग्नि परीक्षा लेते हैं जिसमें सीता सारी उत्तरती हैं और राम सीता को सहर्ष स्वीकार करते हैं । राम को सीता पर सदा विश्वास रहा है केवल जनता के लिए वह कृत्य किया गया था । अवतक १४ वर्ष पूरे हो चुके थे । अतः राम, लक्ष्मण, सीता तथा सारी सेना ने पुष्पकविमान पर बैठकर अयोध्या के लिए प्रस्थान किया । अयोध्या में वे सभी से मिलकर भेंटें जो उनकी बातें जोह रहे थे ।

राम का राज्याभिषेक हुआ । युद्ध काण्ड समाप्त । आनन्द की समष्टि के साथ साथ प्रबन्ध काव्य यहाँ समाप्त हो जाता है । किन्तु राम के उत्तर कालीन जीवन सबन्धित उत्तरकाण्ड शेष है । राज्याभिषेक के कुछ महीनों बाद जनता में सीता के विषय में अपवाद की चर्चा फैली । जब राम को चरों से यह ज्ञात हुआ तो उन्होंने सीता के परित्याग का

निश्चय किया और लक्ष्मण को आज्ञा दी कि सीता को ले जाकर गया के उत्सवार बन में छोड़ आओ। वहाँ उन्हें सब बड़ा देना। मगर सीता इस समय पूर्ण गर्भा थी। लक्ष्मण ने आदेश का पालन किया। सीता ने लक्ष्मण से लौटते समय राम के लिए एक मार्मिक संदेश दिया और करुण रोदन करने लगी। वाल्मीकि ने उन्हें से जाकर अपने आश्रम में आश्रय दिया जो वहाँ से अत्यन्त समीप था। आश्रम में सीता के दो पुत्र पैदा हुए, जिनका पालन, पोषण और शिक्षण महर्षि वाल्मीकि ने पूर्ण सतर्कता के साथ किया। राम अयोध्या में अत्यन्त अज्ञानि का जीवन व्यतीत कर रहे थे। केवल कर्तव्य पालन के लिए शासन करते थे। उन्हें अपनी निर्दोष पत्नी की याद बराबर सताती रहती थी। बर्ष बीतते गये। उन्होंने धर्ममेव करने के लिए धारण छोड़ा। यज्ञ समाप्ति के उत्सव को पूर्णता देने के लिए महर्षि वाल्मीकि भी उन दोनों राजकुमारों के साथ आये जो आदि कवि रचिन रामायण का गान कर रहे थे। राम ने सभा के समक्ष ही बालकों से प्रभावित होकर उनके विषय में महर्षि से पूछा। वाल्मीकि जी ने बताया कि यह आपके ही पुत्र हैं राम को अत्यन्त आश्चर्य हुआ और जब उन्हें यह भी पता चला कि सीता अभी जीवित है तो उन्हें लेने के लिए आदमी भेजा सीता आई तथा रामने सभा के सामने उनसे पुनः अपनी पवित्रता का प्रमाण देने को कहा। सीता दूख अपमान से भरकर जैसे ही बोली कि यदि मैंने अपने जीवन में राम को छोड़कर अन्य से कोई लगाव न रखा हो तो पृथ्वी माता मुझे शरण दें। तत्क्षण ही पृथ्वी फट गई और उसके बीच से एक सिंहासन निकला और पृथ्वी माता अपनी निर्दोष पुत्री को लेकर अन्तर्धान हो गई। वहाँ पूर्ण शान्ति छा गई। इसके बाद अपना अस्तकाल समीप समझ राज्य को चारों भाइयों के पुत्रों में समान रूप से विभक्त कर राम स्वतंत्र हुए। चारों भाइयों स्वर्गारोहण कर गई। राम ने लक्ष्मण का परित्याग कर दिया और स्वयं सरयू नदी में समाधि ले ली। उनका अनुसरण शेष भाइयों और नगरवासियों ने किया। उत्तरकाण्ड समाप्त ।

रामायण, महाभारत तथा पुराण और भवभूति के नाटके

प्रो० जैकोबी ने^१ दास रामायण में भाषा, भूगोल, ज्योतिष तथा अन्य आचारों पर आश्रित होकर रामायण का समय ८००-५०० बी०सी० निर्धारित किया है। रामायण में समय समय पर प्रतिष्ठित अंश जुड़े हैं। यह वाम ईसा की प्रथम शताब्दी तक होता रहा है। बालकाण्ड कुछ ही सूर्य प्राचीन है, जेप मारा बालकाण्ड बाद को सम्मिलित किया गया है। उत्तरकाण्ड तो पूरा बाद का है। इन काण्डों में हम राम को सर्व प्रथम स्वर्गीय भवनार के रूप में वर्णित पाते हैं। उत्तररामचरित राम के जीवन के उत्तरकाल से सम्बन्धित है। भवभूति का उत्तररामचरित रामायण की कथा से बहुत अन्तर रखता है। प्रश्न यह उठता है कि भवभूति के उत्तररामचरित में कथानक का स्रोत कहाँ है? यद्यपि भवभूति ने स्पष्ट शब्दों में वाल्मीकीय कथा के प्रति आभार वीरचरित में और उत्तररामचरित में प्रदर्शित किया है, फिर भी उनके कथानक में अन्य ग्रन्थों का भी बहुत बड़ा प्रभाव है। महाभारत में रामकथा सम्बन्धी रामोपाख्यान है।^२ किन्तु इसमें राम राग्याभियेक के बाद की कथा का कोई भी उल्लेख नहीं है। इसलिए कुछ विद्वान रामायण के वर्तमान रूप को महाभारत में बाद का स्वीकार करते हैं, किन्तु यह ठीक नहीं। क्योंकि मार्कण्डेय पुराण उत्तरकाण्ड की कथा का उल्लेख इस प्रकार करता है कि 'किस प्रकार श्रेष्ठ पुरुष और स्त्री भी दुर्भाग्य के फेर में पड़कर कष्ट उठाते हैं किन्तु अन्त में आनन्द प्राप्त करते हैं। महाभारत ७।३९ में राम की मृत्यु का संक्षिप्त विवरण देता है। किन्तु महाभारत का भवभूति के नाटकों से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। राम कथा कम या अधिक विस्तृत रूप से विभिन्न पुराणों में प्राप्त होती है। जैसे ब्रह्मपुराण (जिसका एक भाग अध्यात्म रामायण है) मायवत पुराण, गरुड

^१—दास रामायण पृ० १११ अभिन सत्करणा

^२—महाभारत ३/२७३

पुराण, स्कन्द पुराण, अग्नि पुराण, कूर्म पुराण और वसु पुराण आदि ।

पद्मपुराण और राम कथानकः—पौराणिक साहित्य में पद्मपुराण राम कथानक की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है । इसमें राम कथा तीन विभिन्न स्थानों में विभिन्नता और अपनी अपनी विशिष्टता के साथ प्राप्त होती है । यह तीनों विभिन्न रूप अपनी-अपनी सामयिक अभेदता और अन्तः सिद्ध करते हैं ।

प्रथम रूप—पद्मपुराण के सृष्टि खंड के तीन अध्यायों में (२६९-२७१) भगवान् राम की कथा है । यह सन्निवृत्त रूप में है और यह अन्त आद का भी माना जाता है । यह कथा उपर्युक्त राम कथा से मिलती जुलती है । केवल ५ स्थानों पर मतभेद है—

१—राम विवाह के बाद पूरे १२ वर्ष अयोध्या में रहे ।

२—काक का कथानक रामायण में उस अक्ष में है जो प्रक्षिप्त माना जाता है । यही पर यह प्रमुख स्थान में है और मौलिक अक्ष है ।

३—पुराण के अनुसार राम ११ वर्ष तक पचवटी में रहे और १४वें वर्ष क्षुण्णला की नाक और कान स्वयं काटे ।

४—पुराण के अनुसार राम राज्याभिषेक के बाद सत्स वर्ष पर्यन्त राज्य करते रहे और बाद में सीता का त्याग अश्वमेध यज्ञ करने पर करते हैं ।

५—पुराण में राम का चरित्र पूर्णरूप से देव रूप में चित्रित है ।

द्वितीय रूप—पद्मपुराण के पाताल खंड का ११२वाँ अध्याय राम कथा का यह रूप देता है, जिसे विद्वान् प्राचीनतम रूप मानते हैं । किन्तु कथा कोई सुन्दर व्यवस्थित रूप न होने से हम इसे कल्पित कह सकते हैं, क्योंकि इस कथा के तथ्यों के कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं । कथा भी अतिसूक्ष्म है ।

तृतीय रूप—पद्मपुराण के पातालखंड का एक छोटा अंश^१ रामकथा का प्रत्यक्ष तो नहीं, किन्तु वाल्मीकीय रामायण के बारे में मौलिक विवरण प्रस्तुत करता है। इसके अनुसार रामायण में ६ काण्ड हैं। १—बाल काण्ड—जो प्राञ्च के बाल काण्ड और अयोध्या काण्ड का योग है। २—अरण्य काण्ड। ३—किष्किन्ध्या काण्ड ४—सुन्दर काण्ड। ५—युद्ध काण्ड और ६—उत्तर काण्ड। उत्तर काण्ड को छोड़कर दोष काण्डों का कथानक रामायण के अनुसार ही है, किन्तु उत्तर काण्ड में अगस्त्यादि ऋषियों से राम के वार्तालाप का, अश्वमेध का और सीता परिष्याग का वर्णन है। पद्मपुराण का यह अंश मौलिक रामायण में—सीता का भूमि प्रवेश, लक्ष्मण की मृत्यु, राम व दूसरे भाइयों की जल समाधि, वाल्मीकि और राम पुत्रों का सभा में आना और रामायण गाना—इन सभी घटनाओं को नहीं स्वीकार करता है। हमारे पास रामायण के २४००० पद्य होने का प्रमाण भी है जो वाल्मीकि जी के कथन १/४ बाल काण्ड से बिल्कुल मिलता जुलता है। पद्मपुराण सगौ आदि के बारे में कुछ नहीं कहता है। वाल्मीकि रामायण के विषय में लेखक ने विश्वास के साथ सभी बातें लिखी हैं।

पद्मपुराण का उत्तर काण्ड सम्बन्धी कथानक—वाल्मीकि रामायण का बाह्य रूप स्पष्टतः उसे दुःखान्त सिद्ध कर देता है। भवभूति के अनुसार^२ वाल्मीकि रामायण अपने प्रथम रूप में राज्याभिषेक के पश्चात् सीता परिष्याग के साथ समाप्त हो जाती है। उत्तरचरित के बारे में वे सकेत करते हैं कि इसे वाल्मीकि ने अभिनय के लिए निर्मित किया और बाद में जोड़ा जो सीतापूजामय के साथ समाप्त होता है। भवभूति का उल्लेख सोद्देश्य है। उत्तर काण्ड के ७वें अङ्क में^३ वे अनुभव करते हैं कि वाल्मीकि द्वारा बाद में जोड़ा गया अंश 'दुःखान्त' है जो हिन्दू नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटकों के

^१—६६ अ० १६४—१८४ ^२—उत्तर० ४/२२ ^३—उत्तर० ७।१५

लिए उचित नहीं है। भारतीय सुखान्त नाटक (कामेडो) पसन्द करते हैं। दुःखान्त (ट्रैजडी) दुःख वर्जित है। फलतः भवभूति ने उत्तरराम-चरित को सुखान्त कर दिया है। यद्यपि भरत मुनि ने स्पष्ट कहा है कि नाटक में सुख और दुःख दोनों का प्रदर्शन होता है^१ किन्तु भी जनशक्ति ही निषम होती है। भारतीय संस्कृति आनन्दवादी है दुःखवादी नहीं।

भवभूति ने रामके उत्तरचरित के निम्न कथानक का वस्तु मविधान पद्मपुराण के पातालखण्ड के आधार पर किया है। पातालखण्ड में राम के राज्याभ्येक बालोत्तर जन्मन का विवेचन इस प्रकार है—अश्वमेध यज्ञ की योजना होती है—अश्व छोड़ा जाता है और कई स्थानों पर पकड़ा जाता है पर सर्वत्र राम पक्ष की विजय होती है। अन्त में अश्व वात्सीकि आश्रम में आता है और लव द्वारा पकड़ा जाता है। युद्ध होता है। कुश आकर सभी रामपक्षी सेनापतियों की जिनमें हनुमान, सुग्रीव आदि हैं, बन्दी बनाते हैं। किन्तु बाद में सीता जो बन्धियों की पहिचान कर अश्व के साथ उन्हें छोड़ा देती है। अश्वमेध यज्ञ पूरा होता है। जब राम उन दोनों बालकों के शीर्षपूर्ण कामों की सुनते हैं तो यज्ञ में आये महर्षि वात्सीकि से उनके विषय में पूछते हैं।^१ वस्तुतः का यथायं परिचय पाकर वे सीता को बुलवाते हैं। दोनों बालक भी रामायण गाते हुए, जो उन्होंने वात्सीकि से सीखी थी, आते हैं। वात्सीकि से अनुपम और अन्य लोगों की साक्षियों के साथ राम सीता को पुनः अंगीकार करते हैं। इसके बाद बहुत काल तक सुख और समृद्धि के साथ शांतिपूर्वक सीताराम राज्य करते हैं।

पद्मपुराण में रामाश्वमेध प्रकरण का यह कथानक भवभूति से बाद का है, इसके लिए कोई तर्क और प्रमाण नहीं हो सकता है।

भवभूति के समय राम के उत्तरचरित विषयक सुखान्त और दुःखान्त दो प्रकार के कथानक प्रचलित रहे हों।

पद्मपुराण और भवभूति के कथानक में अन्तर—

१—पद्मपुराण के अनुसार अश्वमेधीय अश्व की रक्षा भरत पुत्र सेनापति पुष्कल कर रहे हैं। जबकि भवभूति के अनुसार लक्ष्मण पुत्र अन्द्रकेतु सेनापति हैं।

२—पद्मपुराण के अनुसार बालकों (लव आदि) की अवस्था १६ वर्ष है, जबकि भवभूति के अनुसार १२ वर्ष की हैं।

३—पद्मपुराण के अनुसार युद्ध में हनुमान, सुग्रीवादि सभी अनुचरों को भी परामृत दिखाया गया है। जबकि भवभूति इसका पूर्णतः बहिष्कार किया हुआ है।

४—पुराणानुसार अस्त्र विद्या और युद्ध विद्या स्वयं सिखाते हैं, जबकि भवभूति उन्हें पितृ परंपरा से स्वयं प्राप्त कह देते हैं।

५—रघु पुराण में युद्ध क्षेत्र में राम का गमन नहीं दिखाया गया है। वहाँ सीता बन्धियों और अश्वों को, राम के आनकर लुटा देती है और बाद में यज्ञस्थल में राम का बालकों से परिचय होता है। भवभूति राम, कौशल्या आदि परिवार के लोगों को युद्ध में पहुँचाकर सभी को घेंट और पहिचान आपस में करा देते हैं।

६—सीता अपनी शुद्धता का दुबारा प्रमाण नहीं देती है।

रामकथा समीक्षा—भवभूति के दो नाटकों के कथानक की आधमभूत रामकथा में कितने रूप सम्बन्धी परिवर्तन—मौलिक सद्भावन, संप्रदाय और धर्मानुकूल परिष्करण हुए और उसका ऐतिहासिक नया स्वरूप है एवं भवभूति के कथानकों का उससे कहीं सम्बन्ध है। इस पर विचार किया जावेगा।

ऐतिहासिक तत्व—रामायण की कथा वास्तविक घटनाओं पर आधारित है—इसमें सन्देह नहीं है। वाल्मीकि ने केवल दो या एक स्थानों

पर ही अपने नायक का पक्षपात किया है जैसे बालि वध की घटना यह कल्पना निरर्थक होगी कि रामकथानक बिना किसी मूल के वाल्मीकि के मस्तिष्क की उपज है । डा० वेत्तवलकर समावना करने हैं कि हो सकता है वाल्मीकि ने दो घटनाओं—

१—राज्य परिवार के झगड़े और वनवास,

२—दक्षिण भारत का आर्याकरण । यह कोई घाटगान बटा होगा जिसमें किसी और क—किसने दक्षिण भारत में आर्य सभ्यता फैलाई होगी वर्णन रहा होगा,

की कहानियों को एक ही नेता से सम्बन्धित कर एक महाकाव्य का कथावस्तु तैयार कर लिया । वाल्मीकि उत्तरी भारत के हैं मगः उनके ग्रन्थ में दक्षिणी भारत सम्बन्धी भौगोलिक तथ्य सही होने ऐसी आशा व्यर्थ है । कुछ लोग इसी बान का लेकर रामायण की कोरी कल्पना की उपज कह देते हैं । वे राम की मीची राहु की खोज में हैं । पक्षवटी, पपा और ऋष्यमूक की स्थिति आज भी विचारणीय है । वाल्मीकि का भूगोल सलभा हुआ है । किन्तु इन्हीं कारणों को लेकर रामायण के भौतिक तत्वों और कथानक के ऐतिहासिक तत्वों को कल्पना कह देना कोरी देना विचारशून्यता ही होगी ।

रामायण में इतिहास और कल्पना का योग—रामायण इतिहास और प्राचीन प्रारम्भिक प्राकृतिक मूल कथाओं (एलेगरी) का सम्मिश्रण है जैसे ऋग्वेद में सीता शब्द का अर्थ है—^१ कुड (फरो) श्री एक व्यक्ति बाधक संज्ञा नहीं हैं । सीता का जन्म पृथ्वी में कहा गया है और उनके पुत्रों के नाम कुश=एक घास और सब=काटना है । सीता का पुनः पृथ्वी में अग्नधनि होना, यद्वा सब उपर्युक्त वर्णन किसी कृत्रिम देवता सम्बन्धी आख्यान (एलेगरी) ज्ञात होता है । यदि राम को वैदिक इन्द्र मान लें जो कि वर्षा का देव है, तो यह बातें बहुत सुन्दर ढंग से मेल खा जाती हैं । जैसे रावण का पुत्र इन्द्रजीत है और सीता

^१—इन्द्रोद्भवान् उत्तर रामचरित (हाबर्डे सीरीज)

का शत्रु हैं और अवरोध का कारण भी है, मादति जो मानसून वर्षा के बादलों की भाँति है समुद्र के ऊपर उड़ता है और राम को सीता का समाचार—आनन्द—पहुँचाने वाला है। मादति का अर्थ है, वायु-दल का पुत्र। य तस्य इतिहास और कृषि आख्यान दोनों के प्रतीक रहती हैं। आख्यान की ऐसी परंपराएँ वैदिक युग में बहुत सी प्रचलित थीं, किन्तु वाल्मीकि युग के प्रवेश काल में ऐसी परंपराएँ अन्त समय की प्राप्ति हो चुकी थीं। उपर्युक्त विवेचन से निष्कर्ष निकलता है कि रामायण की कथा के तीन स्रोत हैं—

१—ऐतिहासिक सत्य—जो राज्य परिवार के झगड़े और घनवास तथा सीमित है।

२—दूसरी कथा में वे ऐतिहासिक सत्य हैं, जो अत्यन्त उलझे हैं और किसी ऐसे बोर से सम्बन्धित हैं जिसने दक्षिण का भार्यीकरण किया है।

३—आख्यान (एलेगरी) सबंधी सकेन जो इन्द्र और उसके शत्रु-जो कृषि के शत्रु है—(वृत्र आदि) इनमें सम्बन्धित है। यद्यपि इन तीनों ने अब अपनी विशिष्टता खो दी है और ऐतिहासिक रूप में—ऐतिहासिक नेता के वर्णन के रूप में स्वीकृत हो चुके हैं।

कथा होमर के इनिमस और मोडेसी आदि का वाल्मीकि के कथा-नक के ऊपर श्रुत है^१ इसका विवेचन और आलोचन यहाँ हम नहीं करेंगे क्योंकि डा० वेबर के तर्कों का खण्डन के०टी० सैलर^२ और प्रो० जैकोबी^३ ने पूर्णतः कर दिया है।

महाकाव्यों के उपरान्त रामकथा के विविध रूप—

बौद्ध रूप—रामकथानक का एक रूप 'दशरथ जातक' में प्राप्त होता है, जिसे आधुनिक विद्वान बौद्ध रूप से अभिहित करते हैं।

^१—श्रुतवेद ४/५ १/५०

^२—इण्डियन एण्टेक्वेरी १८७५, पृ० १४३

^३—दास रामायण पृ० ९४

कथानक इस प्रकार है—काशी का राजा दशरथ या जिसके तीन सन्तानें थी, राम, लक्ष्मण और सीता। ये सभी उनकी प्रथम रानी से उत्पन्न हुए थे जिसकी मृत्यु के पश्चात् उसने दूसरा विवाह कर लिया। इस नई रानी से उसके एक पुत्र पैदा हुआ, जिसका नाम भरत था। इस एक नये पुत्र की वृद्धावस्था में प्राप्ति से राजा अत्यधिक प्रसन्न हुए और अपनी इच्छा से नई रानी को एक मुंह मांगा वर देने को कहा। रानी ने इस पारितोषिक को समय आने पर लेने के लिए छोड़ रक्खा। सात या आठ वर्ष बाद रानी ने अपने वरदान का स्मरण कर राजा से अपने पुत्र भरत के लिए वर रूप में राजगद्दी मांगी। राजा ने इस प्रकार का वर देना अस्वीकार कर दिया। किन्तु नारी जाति की द्वेष-बुद्धि से भयभीत होकर राजा ने अपनी प्रथम रानी की तीनों सन्तानों को १२ वर्ष बाहर रहने के लिए घर से हटा दिया। उसने १२ वर्ष के लिए ही इसलिए उन्हें बाहर कर दिया कि ज्योतिषियों की भविष्यवाणी के अनुसार उसे केवल १२ वर्ष और जीवित रहना है। राम भाई लक्ष्मण और बहिन सीता के साथ हिमालय की ओर चले जाते हैं। ज्योतिषियों के कथन के विपरीत राजा दशरथ नवें वर्ष ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। बिधवा रानी भरत के लिए राज्य प्राप्ति के प्रयत्न करती है किन्तु भरत पूर्णतः अस्वीकार कर देते हैं और अपने बड़े भाई की आज्ञा में बस जाते हैं। राम से मिलने पर भरत उन्हें सीट चढ़ाने के लिए कहते हैं किन्तु राम उस समय सीटने से अस्वीकार कर देते हैं क्योंकि राजा की आज्ञानुसार अभी १२ वर्ष पूरे नहीं हुए थे। तीन वर्ष बाद वे काशी आते हैं और सीता के साथ विवाह करके शान्ति से शासन करते हैं।

बौद्ध लेखक ने राम कथा का विकृत रूप दिया है। क्योंकि भारत में किसी भी युग में सगे भाई बहिन का विवाह प्रचलित न था। कुछ दिनों तक बाल्मीकि रामायण का आधार दशरथ

जातक को बृद्ध लोण मानते रहे थे। किन्तु प्रो० जैकोबी ने इस विचार को अनर्थक प्रताप सिद्ध कर दिया है^१ आज विश्व के यामने ३०० बी० सी० से बहुत पहिले राम कथा की प्राचीनता प्रकट है।^२

जैन रूप—रामकथा का जैन रूप रविषेण के पद्मपुराण, अमृतमंथन की घमंघरीक्षा और हेमचन्द्र के त्रिपटिशलाका पुष्प-चरित में प्राप्त होता है। इन जैन ग्रन्थों की रामकथा प्रधानतया बाल्मीकि रामायण का ही अनुसरण करती है। रामकथा का प्रयोग जैनियों ने अपने घमं की शिक्षाओं के प्रचार के लिए किया है। राम एक जैन मायु हैं, जो मात्सादि का सेवन नहीं करते हैं। वस्तुतः जैनियों ने कंबनमृग और मारीचि नामा कथातक हटा दिया है। रावण सीता का उस समय हर ले जाता है जब राम और लक्ष्मण जनस्थान के १४ सहस्र राजसों के साथ युद्ध में समान हैं। राम बाती का वध प्रत्यक्ष युद्ध में करते हैं। सीता परिस्थान के वर्यो पदचात् जब राम पुनः सीता से मिलते हैं तो अश्वमेध यज्ञ के कारण नहीं, (जैनी पशुहिंसा करते नहीं अतः यज्ञ का उत्सेह नहीं है) महर्षि बाल्मीकि के कारण नहीं, प्रत्युत जनता के कहने से क्योंकि जनता वास्तविक सत्य जानती है और निन्ही व्यक्ति विदेषो के कहने से यह त्याग अनुचित समझती है। राम सीता को पुनः लो देते हैं। इसलिये नहीं कि सीता पृथ्वी में समा जाती हैं, किन्तु जब सीता पवित्रता की पुनः परीक्षा ली जाती है तो वे संसार की कटुता को समझ और देखकर विरक्त हो जाती हैं और जैनमिश्रणी बन जाती हैं। वे अपने सुन्दर और सबे केशों को अपने हाथों से काट डालती हैं। यह घटना देखकर राम स्वयं जैन मिश्रवत ले लेते हैं। जैन ग्रन्थों के अनुसार रामायण के बन्दर, रीछ और राजस

^१—दास रामायण पृ० ८४-९३

^२—मास के दो नाटक रामकथा से संबंधित हैं।

वस्तुतः बन्दर-रोछ और राक्षस नहीं हैं। किन्तु वे मानव नहीं हैं। वे लोग अपनी पतावामो में बन्दर, रोछ और राक्षसों की भाकृतिया रखते थे जिसके कारण उन्हें इन नामों से पुकारा जाता था।

रामकथा का सुधरा हिन्दू रूप—रामकथा क प्राप्त विविध हिन्दू रूपों के विषय में तो एक विस्तृत अध्ययन लिखा जा सकता है। सस्कृत और विभिन्न प्रान्तीय भाषाभाषा में इस विषय का साहित्य पूर्ण समृद्ध है। इस साहित्य के अध्ययन से, विभिन्न विचारों, विश्वासों और निर्णयों के कारण समय २ पर रामकथा को कैसे २ रूप मिले इसका ज्ञान हो सकता है और आज उसे क्या रूप प्राप्त है इसका ऐतिहासिक विवेचन किया जा सकता है। कुछ तत्वों के विषय में हम यहाँ विवेचन करेंगे जो हमारे विषय से आगे सम्बन्ध रखेंगे।

१—प्रतिशयोक्तियाँ—वाद की रामकथाओं में अति प्रशंसाएँ हैं। जिन्हें हम स्वभावतः सकारण व कारण स्वीकार कर लेते हैं। जैसे सत्ता युद्ध दिनों से बढ़कर महीनों का वर्णित किया गया। रामायण में (विविध सरकरणों में दिन सत्ता विभिन्न है) यह युद्ध दिनों में ही वर्णित है।

समय की दीर्घता का अन्तर अलौकिक क्रियाशक्तियों से जो दोनों पक्ष दिखाते हैं भर गया। घटनाओं और वर्णनों की पुनरावृत्तियों की गई। पात्रों के चरित्रों में उनके अतिकार्यों से अलौकिकता भर गई।

राम का अवतारी रूप—राम को विष्णु के अवतार के रूप में पूर्णतः चित्रित करना यह एक महान् वास्तव्य है। यद्यपि रामायण के बाल और उत्तर काण्ड से ही इस प्रथा का श्रीगणेश हो चुका था किन्तु आगे चल कर यह सीमा पार कर गई। रावण भी राम का महान् भक्त बनवाया जाने लगा। उसकी शत्रुता भक्ति के रूप में

चित्रित की जाने लगी। रावण मुक्ति के लिए भगवान् राम से सन्धुता करता था जिससे उनका मनत ध्यान रहे। सीताहरण उसकी पानेच्छा से नदी प्रत्युन उपयुक्त ध्येय से हुआ था। रावण सीता को मानवुद्धि से देखता था, उन्हें जगज्जननी मानता था। ऐसी भावनाएँ प्रदर्शित की गईं।

अ. शरूपता—कैकेयी के चरित को उज्ज्वल करने के लिए बहुत दिनों से प्रयत्न हो रहे थे। इसके लिए मन्थरा की चुनौती राम को बनवास दिलाने के लिए देवों की ओर से नियुक्त चित्रित की गई, क्योंकि रावण बंध देवों को अप्रसन्न आपेक्षित था। मन्थरा की कलिंग की आत्मा चित्रित किया गया जिसने कैकेयी की आत्मा पर प्रतिकार कर लिया था। वह अपनी दृष्ट्यानुकूल कैकेयी से कहनाती और कराती हैं। इस प्रकार से कैकेयी कृपा का पात्र बनाई गई। सीता के सकाशात् की पवित्रता का प्रमाण स्पष्ट करने के लिए ही उत्तरकाण्ड का कथानक रचा गया और सीता भूमि प्रवेश का कष्टात्मक प्रसंग सामने आया। मन्थाराम रामायण के अनुसार तो रावण ने वास्तविक सीता का हरण न कर दिया की सीता का हरण किया था। राम ने सर्वज्ञाता होने के कारण काचन मृग के आगमन के समय ही सीता जी से अद्भुत रूप में स्मित होने के लिए कहा और माया की सीता वहाँ उपस्थित हुई जिसे रावण हर ले गया और अग्नि परीक्षा के समय माया नष्ट हो गई और वास्तविक सीता उपस्थित हो गई, जो रावण के स्पर्शादि से रहित थी। राम ने माया की सीता का हरण राक्षसों के बंध का अवसर प्राप्त करने के लिए करवा दिया था। इस प्रकार पूर्ण रूप से राम और सीता के आदर्श चरित्र की रक्षा की गई।

पूर्व कारणाता—सभी कार्यों, चरित्रों और घटनाओं के कार्य रूप में चित्रित किया गया। राम और रावण आदि के जन्म भी पूर्व कारणे जन्म हैं। दशरथ का पुत्र वियोग में मरना, श्वशुर कुमार के वियोग में मृत उसके पिता की मृत्यु के कारण होने के कारण चित्रित किया गया।

प्रत्येक रासस राम द्वारा मारे जाने पर देवता हो जाता है क्योंकि किसी कारणवश वह देव से रासस हुआ था। राम कथा के पान पूर्व जन्म के कारणों से सम्बन्धित हैं।

दार्शनिकता—लेखकों का ध्यान कथानक को दार्शनिक सिद्धान्तों के साथ उपस्थित करने की ओर गया। योगवाशिष्ठ और मध्यात्म रामायण (रामगीता) इसके निदर्शन हैं। वेदान्त दर्शन की महत्ता राम कथा में भी प्रविष्ट हुई।

नूतन उद्भावनाएं और कवित्वमयता—इस युग में सीता स्वर्धर और धनद का दोत्यकर्म बहुत ही विस्तार के साथ साहित्यिक बर्णनों के रूप में माने गये। यद्यपि दोष घटनायें जैसी की तैसी ही रहीं। सहस्रों लेखकों ने रामकथा पर लेखनी खलाई है। जिनकी कृतियाँ सारेभारत में पढ़ी जाती हैं। रामकथा का पठन और ध्वन सारी व्यक्ति यथायोग्य करते हैं। रामकथा भारत की संस्कृति और हिन्दूसभ्यता का प्राण बन गई है। यह समाज की मर्यादाओं को दृढ़ करती है और भारतीय जनता में धरने आदर्श पानों के माध्यम से त्याग, प्रेम और सौम्य के भाव भरती है। सत्य की विजय और अन्धकार के विनाश का मौलिक सत्य प्रस्तुति करती है।

भवभूति ने नाटकों में रामकथा का कितना और किस रूप में ज्ञान है—वाल्मीकि रामायण, पद्मपुराण आदि के रास कथानक का कहीं तक उपयोग हुआ है—यह हम पूरक २ नाटकों के वस्तु विवेचन के समय में विवेचित करेंगे।

भास, कालिदास और वृहत्कथा भवभूति को वस्तु के स्रोत—

भवभूति ने उत्तर के प्रथम अंक की कल्पना भास के स्वप्नवासवदत्तम् के ५ अंक के स्वप्न में चित्र दर्शन दृश्य से, धर्मदा रघुवंश के १४/२५ के इस व्लोक से “तयोर्यथा प्राविनमिन्द्रियाचार्यान्” से लिया है ऐसा अनुमान होता है। उत्तर के ६ अंक में राम, कुश आदि का मिलन शाकुन्तल के ७ अंक के दुष्यन्त, भरत आदि के मिलन के समान

है। सीता का छाया रूप शाकुन्तल के सानुमती के छाया रूप की भाँति है। मालतीमाधव ने ९ अंक और विक्रमोर्वशीय के ४ अंक में पर्याप्त साम्य है। विरहीमाधव का मेघदूत कालिदास के मेघदूत से पूर्ण अनुकृत है। मालतीमाधव की केन्द्रकथा गुणादय की बृहत्कथा की ऋणी है, जिसका आमाण लोमेन्द्र की मजरी है। सोमदेव के कथासरित्सागर से भी इस बात की पुष्टि होती है। यथास्थान हम इसका विस्तार के साथ विवेचन करेंगे। महावीर चरित तो रामायण की कथा का कुछ अन्तर के साथ ऋणी है।



पञ्चम अध्याय

—भवभूति के नाटकों का शास्त्रीय विवेचन—

महावीर चरित-कथासार—

प्रथम अङ्क

महर्षि विश्वामित्र के शापम में यज्ञ होन वाला है। उन्होंने यज्ञ की रक्षा हेतु राम लक्ष्मण को लाकर रख लिया है। कुशध्वज भी निमग्नण में सीता तथा उर्मिला के साथ वहाँ पधारते हैं। कुशल प्रश्न के उपरांत कुशध्वज राम लक्ष्मण का परिचय प्राप्त करके हादिक प्रसन्नता प्रकट करते हैं। इसी बीच राम अहिंस्योद्धार करते हैं। कुशध्वज को राम की महिमा देख कर पछड़ावा होता है कि यदि धनुमज्ज की प्रतिष्ठा न लगाई गई होती तो सीता का विवाह राम के साथ होकर ही रहता। इसी समय रावण ने सीता की मगनी के लिए दून भेजा। उसके प्रस्ताव पर टालमटोल होने लगा। इधर राम ने ताडका की तलवार से समाप्त किया। राजा को इससे बड़ा खेद हुआ। उसने पुनः प्रस्ताव किया। राजा तथा विश्वामित्र ने फिर टाल दिया। विश्वामित्र ने राम लक्ष्मण को दिव्यास्त्र दिए। राजा की उत्प्रेक्षा बड़ी देख कर विश्वामित्र ने हर थाप मगवाया और राम से उसको भग करवाया। इस प्रकार चारों भाइयों के विवाह जनक तथा कुशध्वज की पुत्रियों से स्थिर हुए। राम ने मुबाहु तथा भारीच का भी बध किया।।

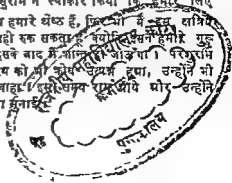
द्वितीय अंक —

मिथिला से लौटकर राक्षस ने सारा वृत्तान्त लकाक्षि के मन्त्री से कहा, उसकी चिन्ता बढ गई। उसने शूर्पणखा से राय ली, इसी समय परशुराम का पत्र मिला कि दण्डकवासी निशाचर वहाँ के ऋषियों को सताते हैं उन्हें रोकिये। इसी प्रसंग में निश्चय हुआ कि परशुराम को उकसाया जाय कि वह हरचाप भत्रक राम का दमन करें। इसर राम कन्यानपुर में थे, दशरथ आदि उनके अभिभावक मिथिलाधीश के यहाँ प्रान्तीय सत्कार प्राप्त कर रहे थे। इसी समय परशुराम आए, और अपने गुरु के चाप के भजन करने वाले राम को देखने की इच्छा प्रकट की।

राम आए, परशुराम को राम के दर्शन से बड़ी प्रीति हुई, परन्तु वह अपनी प्रतिज्ञा से असमर्थ थे, क्षत्रिय कुल नाश की प्रतिज्ञा को दुहराते हुये परशुराम ने राम को भी अध्यक्षीटि में गिरा। इस भ्रमगत वृत्त से जनक, सतानन्द सबको कष्ट हुआ, सबने अपने अपने ढंग से परशुराम को समझाया, फिर भी उनका क्रोध कम नहीं हुआ। जनक अस्त्र बहण करने पर तथा शतानन्द शाप देने पर भी सतारु हो गये, फिर भी परशुराम दृढ़ रहे। इसी बीच राम को अन्तःपुर में बुला लिया गया और शेष जन दशरथ विश्वामित्र के पास गए।

तृतीय अंक

परशुराम के क्रोध को शान्त करने के लिए विश्वामित्र तथा बशिष्ठ ने भी बहुत समझाया। उनकी बिना, तपस्या, कुल परम्परा की अत्यन्त प्रशंसा की। परशुराम ने स्वीकार किया कि हमारे लिए आपके उपदेश मान्य हैं, आप हमारे श्रेष्ठ हैं, फिर भी मैं इस क्षत्रिय कुमार का बध किए बिना नहीं रुक सकता हूँ क्योंकि मैंने हमारे गुरु का अपमान किया है। हाँ इसके बाद मैं शान्त हो जाऊँगा। परशुराम का क्रोध उग्र होते देख दशरथ को भी क्रोध उत्पन्न हुआ, उन्होंने भी अस्त्र का अवलम्बन करना चाहा। इसी समय राम आये और उन्होंने परशुराम के दमन की प्रतिज्ञा सुनाई।



चतुर्थ अंक

पराजित परशुराम तप करने चले गए उन्हें ज्ञान हो गया । परशुराम को पराजय से राक्षसराज के यशो मात्स्यवान् को बड़ी चिन्ता हुई, उसने उपाय सोचना प्रारम्भ किया, जिससे राम को दवाया जा सके । राम के अम्युदय से उसे मय होता था । परामर्शानुसार सूर्यपत्नी को मन्थरा का रूप धारण करके मिथिला भेजा गया, वह कंकेशी की दासी मन्थरा के रूप में मिथिला आई, और कंकेशी से रामा के द्वारा दिए गये वरदान की बात बताने लगी । एक वर से भरत को राजा तथा दूसरे वर से राम को चौदह वर्षों के लिए वनवास दिलवाया । सीता तथा लक्ष्मण के साथ राम बन गए, साथ ही उनके पुरजनों को साथपूर्वक लौटा दिया । भरत को बहुत साथपूर्वक लौटा दिया । भरत के बहुत साथ करने पर राम ने अपनी स्वर्णमय पादुका उन्हें दे दी, जिसे मन्दिग्राम में अभिषिक्त करके भरत ने राज्य कार्य का सञ्चालन प्रारम्भ किया । राम दण्डक की ओर बढ़े ।

पञ्चम अंक

रावण ने सीता का हरण किया । उसकी खोज में राम लक्ष्मण वन-वन भटकते थे, उसी प्रसंग में जटायु से भेंट हुई, जिसे सीतापहर्ता रावण ने मृत्युप्रतीक्षा बनाकर छोड़ा था । जटायु से सारी स्थिति का ज्ञान प्राप्त करके राम लक्ष्मण किष्किन्धा की ओर बढ़े, मार्ग में विराध का वध किया । सुग्रीव से मिली हुई । रावण प्रेरित वाली का वध करके राम ने सीता की खोज में वानरों को भेजा । मरने के समय वाली ने भी राम और सुग्रीव की मंथी में द्रुता का वन्दन डांसा ।

षष्ठ अंक

वाली के मरने पर मात्स्यवान् को बड़ी चिन्ता हुई, उसे अपने पक्ष का दुर्बलत्व प्रकट प्रतीत होने लगा । उसने प्रयत्न किये कि रावण कुछ उपयुक्त उपाय काम में लावे किन्तु रावण ने इस पर कोई चिन्ता

नहीं की। राम ने लका पर चढ़ाई की। राम रावण सैन्य में घोर युद्ध हुआ, एक-एक कर वीरगण बटने मरने लगे। घमासान युद्धोपरान्त मेघनाद-संघर्ष में, युद्ध में मेघनाद प्रयुक्त-शक्ति से ग्राहत लक्ष्मण मूर्छित होकर गिर पड़े। राम पक्ष में विषाद की घटा छा गई, सबकी सम्मति में हनुमान सञ्जीवनी लाये गये, उस विशेष जड़ी के नहीं पहचाने जान पर वे पर्वत ही उठा लाये। पर्वतवर्ती शीपशो की हवा के लगने में लक्ष्मण की चैतन्य हो भाया। राम पक्ष में खुशियाँ मनाई जाने लगी। तदनन्तर युद्ध में मेघनाद रावण सभी मारे गए, सीता का उद्धार हुआ।

सप्तम अङ्क

रावण की मृत्यु के पश्चात् राम ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार विभीषण को लङ्का का अधिपति बनाया। विभीषण ने राज्याधिकार के मिलते ही देव-वन्दियों को मुक्त कर दिया। लङ्का काण्ड समाप्त करके अग्नि-युद्ध सीता को साप से, राम लङ्का से अयोध्या की चले। विमान पर से सीता को राम ने मार्गवर्ती समुद्र और अन्यान्य स्थानों के परिचय दिए। मार्ग में विश्वामित्र का आश्रम मिला परन्तु उनका आदेश हुआ कि जोध्र अयोध्या जायें, मार्ग में रुके नहीं। अयोध्या प्रान्त में भरत आदि वन्धुओं से मिलने के बाद वसिष्ठ आदि पूज्य ऋषियों ने राम का राज्याभिषेक किया। इस प्रकार राम का वीरचरित पूरा हुआ।

नाम, वस्तु और पात्र समीक्षा

महावीरचरित को वीरचरित भी कहते हैं। इस नाटक के नाम के विषय में बड़ा आकर्षक विचार यह है कि सारे नाटक में राम के लिए कही भी महावीर नाम से अभिहित नहीं किया गया है। जब कि राम के सभी प्रमुख अनुगण, कवि और पात्रो

द्वारा, स्वयं राम द्वारा भी—महावीर कहे गये हैं। दाम्भी, क्षर, दूर्योधन, निशिरा, रावण और परशुराम आदि सभी महावीर पदमात्र हैं। राम के लिए कही भी महावीर शब्द नहीं प्रयुक्त हुआ है। यतः नाटक का नाम चिन्त्य न होते हुए भी विचारणीय है।

राम की कथा जो प्राचीन वैभव और मनोभ्रम विनाश भविष्य की आशा लिए थी, कवि को आकृष्ट करने में पूरा सफल हुई। महावीर चरित के १/७ से यह स्नेह प्रथम बार ही स्पष्ट हो उठा है। इस नाटक में लेखक ने रामकथा के पूर्वार्ध को नाटकीयता प्रदान की है। नाटक का कथानक राम विवाह के बहुत पहिले से लेकर वनवास, सीता हरण तथा सीता की पुनः प्राप्ति और अयोध्या प्रागमन एवं राज्याभिषेक के बाद आकर समाप्त होता है। अवभृति ने बड़ी कुशलता से कई वर्षों के लंबे समय में खींची हुई विविध घटनाओं और कार्यों को एक सूत्र में निबद्ध कर विविध और बहुसंख्यक पात्रों के साथ नाटकीय रूप में उपस्थित किया है। कवि के सामने यह एक बड़ी समस्या थी। एकता का कोई सूत्र न था। केवल वे सभी राम से सम्बन्धित वे यही एक एकता का मूल था। यद्यपि कवि की यह कृति कलापूर्ण और सफल नहीं कही जा सकती फिर भी कवि का यह प्रथम प्रयास स्तुत्य है। कवि ने इस नाटक में बहुत से पात्र—परशुराम, मन्थरा, दूर्योधन, क्षर 'मरीच' जटायु, सुग्रीव, हनुमान, बाली, कैकेयी, मातृवार्ता, विभीषण, कुम्भकर्ण, रावण, विश्वामित्र आदि न जाने कितने चरित्र उपस्थित किए हैं। जो धाते और तुरन्त जाते हैं। परिणाम स्वरूप नाटक में कथानक की एकता का मोहक नहीं है। नाटक एक भीड़ के रूप में है। किन्तु महाकाव्य की रामकथा को नाटकीय रूप में प्रस्तुत करने की दिशा में यह प्रथम चरण अपना महत्व रखता है। जिसमें एक कथा ऐतिहासिक तथ्य के साथ छोटी छोटी कई घटनाओं में विभक्त कर दी गई है।

रामायण व माव २ भाग के चानचरित, प्रतिमा नाटक और अभिषेक नाटक का भी महावीरचरित के कथानक के ऊपर प्रभाव है ।

रामायण और महावीर चरित के कथानक में अन्तर—हम यहाँ पर यह विचार करें कि भवभूति कैसे कथानक में एकता लाने और नाटकीय आवश्यक तत्वा का संग्रह करने के लिए रामायण के कथानक में इधर उधर हूँ है । नाटक व राम एक आदर्श नृपति हैं और भवभूति ने अपने नायक के आदर्श चरित्र की प्रत्येक प्रकार की रक्षा की है । उनका शत्रु रावण राक्षसों का राजा है जो दुष्ट और मायावी है । फिर उनका प्राचरण मानवीय और स्वाभाविक है । पौगणिक ज्योतिषिकता से रहित है । राम के विरुद्ध कायों का संचालन रावण की ओर से होता है । राम का चरित्र नितांत उदात्त है । जनक के सीता स्वयंवर समोजित करने पर रावण भी अपने को एक उम्मीदवार के रूप में अग्रस्थान रीति से उपस्थित करता है । वह स्वयं उपस्थित न हाकर दूत के द्वारा जनक से सीता की याचना करता है । उस अपने प्रभाव का भव है । जिसके कारण स्वयंवर के नियमों का उल्लंघन करता है । उसकी मांग अस्वीकार कर दी जाती है और इसके सामने ही सीता राम का वरण करती है । यह रावण की शक्ति और वारता का प्रथमान भा । वह अत्यंत क्रोधित हो बैठता है । उसका क्रोध में और अधिक बढ़ा जाता है जब वह यह भी जान पाता है कि राम ने ताड़का, सुबाहु आदि राक्षसों का सहार कर दिया है^१ । माल्यवान जो रावण का विश्वासपात्र मंत्री और सलाहकार था उसे सामंत्वना देने का प्रयत्न करता है तथा रावण की इच्छाओं की पूर्ति कूटनीति के माध्यम से सरलता और सहजता से कराना चाहता है । नाटककार ने माल्यवान को विशेष महत्ता प्रदान की है । वह महान सफल कूटनीतिज्ञ और प्रभावशाली व्यक्ति है जिसके

आश्रय पर रावण को पूर्ण विश्वास है। मात्स्यवान परशुराम से जाकर मिलता है और राम के विरुद्ध उत्तेजित करता है।^१ वह सफल होता है और परशुराम राम के विरुद्ध जनकपुर जा पहुँचते हैं किन्तु आशा के विपरीत यही पराजित होते हैं। मात्स्यवान भी योजना को एक धक्का लगता है। फिर भी षोडश और मयाना सचिव हुआ नही होता है। रावण की बहिन दूर्पणसा को अवोध्यता भेजता है कि वह जाकर मन्थरा के रूप में कैंकेयी की दासी बनकर रहे और राम के जनकपुर से लौटने के पूर्व ही जाकर उनसे बहे कि उनकी सीतली मा ने उन्हें १४ वर्षों के लिए बनवास दे दिया है। इस प्रकार मात्स्यवान राम और सीता को वन में असहाय भटकने के लिए छोड़ना चाहता है जिससे शत्रु, दूर्पण के द्वारा सेना के बल से राम को पराजित कर सीता छीन लेना कोई कठिन कार्य नहीं रह जाता। यह योजना कुछ दूर तक सफल हुई। राम ने वर्तमान के दृष्टिचोण से वन जाना स्वीकार कर लिया। सीता तथा लक्ष्मण ने उनका अनुगमन किया।^२

मवभूति ने रामकथा में यह नई उद्भावनाएँ करके तीन काव्यों का संपादन कर लिया है।

१—कैंकेयी चरित्र को कल्पित होने से बचा लिया।

२—दूर्पणसा की पहिले से ही राम विराय में ससन्न रहकर कवि ने पंचवटी के कथानक के लिए पृष्ठभूमि तैयार कर ली जिससे राम को घोसा और सकोच न्याय की दृष्टि से न हो सके।

३—राम के चरित्र को ऊँचा उठाने के कई सुमधुर हाथ धागए। लक्ष्मण ने सीता हरण प्रवेशक में करा दिया है^३ जबकि राम १४००० राक्षसों के साथ युद्ध में व्यस्त थे। मात्स्यवान अपनी अनस्थानीय सेना के द्वारा राम को पराजित करने में असफल होता है तो वानरराज वाली को अपनी ओर मिलाता है और उसके द्वारा राम

^१—म० च० एक द्वितीय प्रवेशक

^२—धक ४

^३—म० च० ५ शंक

का वध करना चाहता है। राम और बालि का खुले स्थान में युद्ध होता है जिसमें बाली मारा जाता है। बाली ने मरते समय सुग्रीव और अंगद को राम के सारक्षण में दे दिया^१। इससे बलि ने दो बातों का सुधार कर लिया है—

१—राम का सुग्रीव के साथ सम्झौता कर बालि का अन्वय से वध

२—बालि और सुग्रीव का अनुपयुक्त युद्ध का दृश्य।

यही नाटक के कथानक की चरम सीमा (क्लाइमैक्स) दिखाई देती है। मातृवर्णन एक के बाद दूसरा इस तरह से कई उपाय प्रयोग में लाता है किन्तु उसका उद्देश्य सिद्ध नहीं होता है। क्योंकि अप्रत्याशित परिणाम निकल आते हैं। कूटनीतिक प्रयत्न असफल होने पर सीधे शक्ति में राम को धिक्कृत के लिए उपारम्भ किये जाते हैं किन्तु मातृवर्णन असफल होता है और रावण मारा जाता है।^२ विभीषण लका के राजा होने हैं और राम पुनः सीता को प्राप्त कर अयोध्या को लौटते हैं, जहाँ उनका राज्याभिषेक होता है।^३

संविधान की दृष्टि से वस्तु समीक्षा—भवभूति द्वारा कृत कथा वस्तु सम्बन्धी परिवर्तनों पर जब हम विचार करते हैं तो यह बात पूर्णतः हमारे सामने उपस्थित रहती है, कि भवभूति ने अपने कमाक्षीती के साथ नवीन स्वतन्त्रतापूर्ण व्यवहार किया है। उन्होंने परिवर्तन की अधिकता रखकर कथा को मौलिकता और नाटकीयता प्रदान की है जिसमें सुन्दरता और उपयुक्तता में बृद्धि हुई है। जैसे बालि के कथानक को एक नया रूप देकर उन्होंने अपने नायक की धीरोदात्तता की रक्षा की है। बालि का विश्व वध धीरोदात्तनामक के प्रतिकूल कार्य होता। वह जो कृष्ट कहना चाहते थे, उसके विषय में उनके मस्तिष्क में स्पष्ट धारणा थी यही बात उनके परिवर्तन और परिवर्णन के बारे में भी कही जा सकती है। महाकाव्य की वर्णनात्मक कथा को ज्यों का त्यों

^१—पृ० पृ० ५ अंक

^२—पृ० पृ० ६ अंक

^३—पृ० पृ० ७ अंक

यह नाटक मे नहीं रखना चाहते थे। उन्होंने अपने नायक के विभिन्न कार्यों, आपत्तियों और सफलताओं मे एक प्रेम लेकर एक घुट्ट चरित्र का चित्रण किया है। वे ऐसी घटनायें चुनते हैं जहाँ स्वतंत्रता के साथ उन्हें अवसर प्राप्त था। राम का चरित्र, कर्तव्य के साक्षात् भूतंरूप, सहिष्णुता, सत्यता, शौर्य और चतुरता के आचार के रूप में चित्रित किया गया है। उधर परशुराम जिनमेशौर्य प्रधानक क्रोध के साथ था। बालि जिसमे युद्ध बीरता के साथ २ दूरदर्शिता विवेक और आत्म-विश्वास की कमी थी जिसके कारण ये दोनों विनष्ट हुए। रावण शारीरिक और मस्तिष्क की विशेष योग्यताओं से सज्ज था किन्तु सीता के प्रति अनुचित वासना उसके विनाश का कारण बनी। यह पूर्णतः स्पष्ट है कि सारा नाटक विरोधी भावनाओं और विचारों का संचय है।

महावीर चरित्र के गुण—महभूति की यह प्रथम रचना है। प्रथम प्रयास में कला निखरती नहीं है। नाटक कथानक की एकता की दृष्टि से कवि के प्रयत्न की ओर निर्देश करता है। कवि की सफलता उसके सुन्दर चरित्र चित्रण में है। कवि का सारा प्रयत्न राम के आदर्श और सर्वोत्तम चरित्र के निर्माण में लगा है। युद्ध बीरता तो उनका महान् गुण है। वे अपने शत्रुओं के प्रति भी हानि करने का विचार नहीं रखते हैं।^१ शत्रुओं की बीरता का कथन वे उदाहरण के साथ करते हैं।^२ वे सहृदयता के साथ उनकी हार और अपने व्यवहार पर विचार करते हैं।^३ उन्हें अपनी बीरता पर पूरा विश्वास है।^४ वे युद्ध के नियमों के प्रतिकूल अपने शत्रुओं से कोई लाभ प्राप्त नहीं करना चाहते हैं।^५ शिष्य की दृष्टि से, पुत्र की दृष्टि से और नृपति की दृष्टि

^१ म० च० १।३१-३२

^२ म० च० २।३२-३६

^३ म० च० ४।२१, २।५६

^४ म० च० २।३३,

^५ म० च० ६।४६, २।५०,

से उनका कर्तव्य पातन श्लाघ्य है ।^{१०} विरोधी चरित्रों के दार में हम पहिले विवेचन कर ही चुके हैं ।

यद्यपि भवभूति राम के दिव्य और अलौकिक रूप से पूर्ण परिचिन हैं फिर भी उन्होंने एकामय स्थलों का छोड़कर सर्वत्र राम को एक ध्यान के रूप में पूर्णतः निहित किया है । क्योंकि अलौकिक चरित्र लौकिक जीवों को विशेष रूप से बाह्यष्ट करने, मित्रा देने और हृदयगम होने में विशेष सक्कन नहीं हो सकता है । इस नाटक के कुछ पद्य जो तृतीय और चतुर्थ अंक के हैं, उच्च कोटि के हैं । कनिष्य आध्यात्मिक संवाद भी महत्वशाली हैं । और राम का परिचाक सुन्दर हुआ है । शिव जी के चतुष्टय के सङ्गिन हाँ जान पर लक्ष्मण की दर्शोक्ति—

“दोर्दण्डाञ्जिनचन्द्रशेखरयगुर्दण्डावमङ्गोद्यतम्—” जिसमें दर्प शब्दावली से ही टपका पड़ता है ।

आमदाम्य राम को देख कर कहते हैं—

प्रातुं लोकानिष परिणत कायवानस्त्रवेद
ज्ञात्रो धर्मः श्रित इवतनुं महाकोशस्यगुप्त्यै ।
सामर्थ्यानामिव समुदयः सञ्चयो वा गुणानाम्
प्रादुर्भूय स्थित इव जगत्पुण्यनिर्माण राशिः ॥

महावीर चरित २।४१

अमृतपदार्थों की मूर्तरूप देकर सुन्दर चित्र अंकित किया गया है । श्रमणा का विन्यासही का वर्णन अपने क्षेत्र में अद्वितीय है ।^१ जब इस स्थान के पद्यों की उत्तररामचरित में उठाकर रखने का लोभ सबरण नहीं कर सका है—

“इह समदशकुन्ता क्रान्त वा नीरमुक्त,
प्रसव सुरमिशोतस्वच्छतोया वहन्ति ।
फल भर परिणाम श्यामलम्बुनिकुञ्जस्त्रलान
सुरसरमूरिसौतसो निर्मलिनयः ॥ १।४०।म० च०

^१ म० च० १।३८, ४।४२, ४।३९

और भी—

दधति कुहरभाजामत्रभल्लूक,
यूना नुसरति गुरुणिस्त्यानमम्बुकृतानि ।
शिशिरकटुकपायः स्त्यायते सल्लकी-
नाभिभदलितविशोर्णमन्यनिध्यन्दगन्धः ॥म०च० ५४१॥

महावीर चरित की त्रुटियाँ—महावीर चरित की रचना में कवि की सफलता नहीं मिली है। जवे २ सबाद, बडे २ वर्णनात्मक प्रसंग, जिनसे कई स्थलों पर घटनाओं की गति में अवरोध उत्पन्न हो गया है। पात्रों के चरित्र चित्रणों में उत्तरोत्तर विकास का अभाव है। मानव हृदय के सूक्ष्म निरोक्षण में कवि सफल नहीं हुआ है। भाव और भाषा उदात्तता की सीमा से दूर हैं। किन्तु इस नाटक का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसके पात्र कुछ स्थानों पर तो अतुर हैं और शेष सारे नाटक में वे अविश्वासी, अन्धविश्वासी और हठी हैं, चरित्र विकास की दृष्टि से केवल परशुराम ही सामने आते हैं। राम तो प्रारम्भ से अन्त तक आदर्श नायक बने रहते हैं। वीरता, उदारता, सत्यता आदि सभी दशाओं और रूपों में विभिन्न व्यक्तियों के सम्बाध में, सर्वत्र राम आदर्श पुरुष हैं। यही बात नायिका सीता के भी साथ है। भालसीमाधर की तरह का भाव और विचार वैविध्य तथा स्पर्ध सीता में नहीं है। वासना और प्रेम के उठार चढ़ाव और विकास का मासती में जो रूप है, वह यहाँ नहीं है। मन्त्री मात्यवान् भी प्रारम्भ से अन्त तक एक ही लकीर पर चलता और एक ही बात सोचता है। मुद्राराक्षस के राक्षस से उसकी तुलना की जा सकती है।

दूसरा सन्धिधानिक दोष यह है कि कर्षिकही सुनी बातों को भी पुनः विस्तार के साथ कहने में रुका नहीं है। मात्यवान के बारे में यह पूर्णतः चरितार्थ होता है। उसके वही उपाय, वही आशाएँ वही निराशाएँ, और भय खेदपूर्ण कहे जा सकते हैं। चतुर्थ अंक विरक्रमक भी उपयुक्त नहीं है। तृतीय-अंक का शब्द-युद्ध जो परशुराम और शतानन्द,

जनक, दशरथ, विश्वामित्र इन दो पक्षों में हुआ एक व्यर्थ का विस्तार हो है। इसे हम लेखक के द्वारा अपने व्याकरण, न्याय, मोमासा, धर्म-शास्त्र आदि विषयक ज्ञान के प्रकट करने के लिए निमित्त मानेंगे। इससे अविनय की दृष्टि से रगमच में असुन्दर असुविधा पैदा हो जाती है। एक पात्र और अधिक पात्र बाध्य है बाध्य हो जाते हैं प्रतीक्षा करने के लिए जब तक वक्तापात्र अपनी काव्यमय तकविली भाषण के रूप में प्रयुक्त करता रहता है। नाटक की भाषा कठोर, कृत्रिम और कम सुन्दर है। इसमें कई स्थल अनुपयुक्त हैं जिन्हें आसानी से संकेतित किया जा सकता है। जैसे ५/३८ और ७/१६ ॥ डा० भण्डारकर तो महावीर चरित का अरोचक और अपरूप कहते हैं।

उत्तर रामचरित—उत्तर रामचरित भवभूति की कला की सुन्दर-तम सृष्टि कहा जाता है अपने गुणों से यह नाटक नाट्य जगत् की सुन्दरतम सृष्टियों में से एक है। भवभूति अपने इसी नाटक के चल पर कालिदास के समस्त भाते हैं किसी-किसी नातोषक की दृष्टि से भागे बड़ जाते हैं।

“उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते”

यह तो निश्चित है कि उत्तर रामचरित के कारण ही भवभूति और कालिदास विषयक तुलनाओं की परंपरा चल पड़ी है जो अत्यन्त प्राचीन है।

“कवयः कालिदासाद्याः भवभूतिर् महाकविः”

“तरवः पारिजाताद्याः स्नुहीवृक्षो मेहावरुः”

आदि विवाद प्राचीन काल से चले आ रहे हैं।

उत्तर की कथा वस्तु के स्रोत—उत्तर रामचरित के कथानक के स्रोत रूप में बात्मोकि रामायण प्रसिद्ध ही है और कुछ दूर तक हैं भी, किन्तु उत्तर के कथानक में पद्मपुराण के पाताल खण्ड और रघुवंश, अग्नितानशाकुन्तल तथा भास के स्वप्नवासवदत्तम् का कुछ विशेष प्रभाव है।

(१) उत्तर का आलेख्य दर्शन नामक प्रथम अंक कालिदास क—
 “तयो र्यथा प्रार्थितमिन्द्रियार्था,

ना से द्रुप सद्ममु चित्ररत्नु ।

प्राप्तानि दुःखान्यपि दण्डकेषु,

सन्धिन्त्यमानानि सुखान्य भूवन ॥”

का विस्तृत रूप है ।

(२) सीता और शकुन्तला जब दोनों अपने पुत्रों के साथ पूरा रूप से पति परित्यक्ता है—उस समय कालिदास के राम कहते हैं—

“राजपि वशस्यरवि प्रसूते रुपस्थितं परयत कीदृशो ज्यम्
 गत सदाचार शुचे कलक पयोद वातादिव दर्पणम् ॥”

भवभूति के राम—

“यत्सावित्रैर्दीपित भूमिपालै

लोकग्रेष्ठै साधु शुद्ध चरित्रम् ।

मत्सम्बन्धात् करमला किं वदन्ती

स्यान्चेदस्मिन् हन्तधिक् मामघन्यम् ॥”

(३) सीता और शकुन्तला दोनों के पुत्रों से उनके पतिपत्नी को भेद बिना पूर्व कल्पित कारण के आश्रमों में होती है—न जाने कितने-प्राय १०-१२ वर्षों के बाद । दोनों पिता पुत्रों को देखकर समान रूप से आश्चर्य से अभिभूत और वास्तव्य रस से ओत प्रोत हो जाते हैं एवं बालकों के स्पर्श से महान् मुक्ति प्राप्त करते हैं—

“अस्य बालकस्य रूप सदादनी ते आकृति” शाकुन्तलम् ७ अङ्क

“अये न केवलमस्मत् संवादनी आकृति” उत्तर० ६ अङ्क

और भी—

“अनेन कस्यापि कुलाङ्कुरेण”—शाकु० ७/१६

“अद्वात् २ स्नुत इव निज स्नह जो देहसार”—उत्तर० ६/२२

^१ रघुवश १४/२५

^२ रघुवश १४/३७

^३ उत्तर० १/४२

(४) दोनो कवियों ने दम्पति वियोग के महान् दुःख सहते हैं विरहातुर होते हैं और जब प्रचानक मिलते हैं तो शकुन्तला दुष्यन्त को देखकर कहती है—

“न खलु आर्य पुत्र इव”—७/०१ के बाद शाकु०

भवभूति की सीता राम को देखकर कहती है—

‘हा कथं प्रभातचन्द्रमण्डला पाण्डुराकृति’

उत्तर० ३/८ के बाद

दुष्यन्त शकुन्तला को देखकर कहते हैं—

“धसने परिधूसरे वसाना०”—शाकु० ७/२१

उत्तरराम चरित में तमसा सीता के लिए भी यही कहती है—

“परिपाण्डुदुर्बल कपोल०”—उत्तर० ३/४

भास के स्वप्नवासवदत्तम् का पंचम अंक जब वासवदत्ता जल गई है, ऐसा प्रसिद्ध था, उदयन वासवदत्ता को स्वप्न में देखता है, तथा कुछ प्रस्पष्ट स्वरो में कहता है, उसी समय वासवदत्ता अकस्मात् पहुँच जाती है और राजा से बात करती है एवं उनका हस्तस्पर्श कर लेती है। स्पर्श के होते ही राजा चैतन्य हो उठ बैठते हैं। वासवदत्ता तत्क्षण ही हट जाती है। भवभूति के उत्तररामचरित के ३ अंक का निर्माण—सीता और राम का मिलन इसी प्रकार होता है। इसके उपरान्त उदयन और विदूषक का वार्तालाप, सीता और वासन्ती के वार्तालाप की ओर सकेत करता है।

हमारा अनुमान है कि वाल्मीकीय रामायण के साथ-साथ जिसे बीरचरित में भवभूति ने स्पष्ट स्वीकार किया है, उपर्युक्त ग्रन्थों के कथानक और घटनाओं का आधार भी भवभूति को अपने नाटक की वस्तु के लिए प्राप्त था। ✓

कथानक का वैशिष्ट्य—उत्तर रामचरित के नाम से ही स्पष्ट हो जाता है, कि इस कृति में कवि ने राम के जीवन का उत्तरार्ध वर्णित किया है। यह नाटक शान्यामित्रेय के उपरान्त सीतापरित्याग से

प्रारम्भ हुआ है और उनक पुनर्मिलन व साथ समाप्त हुआ है। उत्तर की घटनाओं से सिद्ध है कि कवि का अपन पूर्व नटक की भाँति इसकी कथावस्तु में स्थान-स्थान पर परिवर्तन नहीं करना पड़ा है। भवभूति का कथानक दो समस्याओं का निराकरण है और इन्हीं के समाधान के साथ समाप्त हो जाता है—१।

१—सीता एसी माधवी और प्रिय जो का राम ने धाड़न का साहस और बिलारे क्या घोर कसे किया ?

सूरियोग की है परिस्थितियों के सहने हुए भी पुन स्वीकार क्या किया ?

इन मनोवैज्ञानिक समस्याओं का समाधान भवभूति ने प्रथम तीन अंकों में किया है और फिर उन घटनाओं की उनका हुई कड़ी का मिलन कराती है चार अंकों में है।

✓ कयासार

प्रथम अङ्क — रामराज्याभिषेक के अनंतर उनक व चल जाम पर सीता उदास हो जाती है राम उन्हें सोचता है। इस सीता के मनोविमर्शों लक्ष्मण ने राम के जब तक की जीवन की घटनाओं को लेकर एक चित्रपट तैयार करवाया है। सीता राम व लक्ष्मण के साथ उसे देखती हैं एवं चित्रदृश्य से उत्पन्न हुई भगवती भागीरथी में अवगाहन करने की प्रतीक्षा व्यक्त करती हैं चित्र दर्शन के अन्त में एक कर सीता सो जाती है। इसी समय दुमुख नामक एक गुप्तचर सीता के सम्बन्ध में साक्षात्कार का समाचार लेकर राम के पास उपस्थित होता है। इस समाचार को सुनकर राम की पीड़ा होती है। एवं और राज घम का प्रान और दूसरी ओर कठोरवर्मा सीता की अवस्था। अन्त में व अपने कर्तव्य-यासन का निश्चय करते हैं। लोकरजन के लिए अपनी प्राणप्रिया का परिहारा करने की कृतकल्प वह लक्ष्मण को सीता के निवासन का आदेश देते हैं। भागीरथी दृश्य

की इच्छा तो सीता वी थी ही इसी इच्छा की पूर्ति के घटाने वह निर्वासित कर दी जाती हैं ।

द्वितीय अङ्क — इसमें आग्नेयी नामक नपस्विनी व वनदेवता (वासन्ती) के सवाद माध्यम से कई घटनाओं की सूचना दी जाती है । आग्नेयी महापि वाल्मीकि के आश्रम में रहकर अध्ययन करती थी किन्तु वहाँ अध्ययन सम्बन्धी बिघ्न उपस्थित होने से दण्डकवन में भ्रमण पड़ा है । वह महापि वाल्मीकि को किसी देव विशेष द्वारा दिये गये दो मन्त्रों की सूचना देती है जो कुश व सब नाम के हैं एवं अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि होने से उनके साथ अपने जैसों की साथ साथ पढ़ने की प्रयोग्यता बतलाती है । वह सीता के निर्वासन की सूचना भी आग्नेयी को देती है एवं राम के अश्वमेध यज्ञ के आरम्भ करने का भी समाचार देती है जिसमें राम हिरण्यमयी सीता की मूर्ति से धर्म-चारिणी का काम लेंगे । तत्पश्चात् वह बतलाती है कि सीता का निर्वासन हो जाने के कारण दुःख सतप्त भगवान् वशिष्ठ, माता अरुन्धती और कौशल्या आदि मातायें बाभाव के यज्ञ से सौटन पर प्रयोज्य न जाकर वाल्मीकि के आश्रम में पहुँच गई हैं । शम्भूक नामक दूत के दण्डकारण्य में तप करने की सूचना वासन्ती को उसके द्वारा प्राप्त होती है जिससे उसे राम के पुनर्दर्शन की आशा होती है । शम्भूक को खोजते हुये राम दण्डक वन में प्रवेश कर शम्भूक का पथ करते हैं । दण्डकवन में प्रकृति की शोभा का अवलोकन करते २ राम सीता की स्मृति से अवसन्न हो जाते हैं । तत्पश्चात् राम पञ्चवटी में प्रवेश करते हैं ।

तृतीय अङ्क — लक्ष्मण और बुरला सखियाँ बतलाती हैं कि सीता जब लक्ष्मण द्वारा जलमय मण्डप में निर्वासित हुई तो वे लक्ष्मण के जाने के बाद ही निकल कर गंगा में कूद पड़ी वही जल में सब कुश का भ्रमण हुआ । गंगा पृथ्वी

सीता को रमानव सौभाग्य कर से गई और बालकों को गंगा देवी ने महर्षि वाल्मीकि को सौंप दिया । इसके बाद सीता छाया रूप में प्रकट होती है । राम पंचवटी में प्रवेश करते हैं पर वे सीता को देख नहीं पाते । उनसे हृदय में सीता विषयक विरह वेदना अत्यन्त बढ़ी हुई है । अपने पुराने श्रीहस्तियों को देखकर राम मूर्च्छित हो जाते हैं तब सीता अपने स्पर्श से उन्हें चेतन करती हैं । यद्यपि राम सीता को देख नहीं पाते पर उन्हें विश्वास हो जाता है कि वह स्पर्श सीता का ही है अन्य का नहीं । बात चीन के प्रसंग में वासन्ती राम को सीता के निर्वासन का उलाहना देती है । राम सीता के शोक में प्रभुक्त कण्ठ होकर विलाप करते हैं ।

चतुर्थ अङ्क—वाल्मीकि आश्रम में दो तपस्वी बालक परस्पर बातचीत करते हुये आते हैं । यहाँ वशिष्ठ और अरुन्धती राम की माताओं के साथ पूर्व ही आ चुके थे । इसी समय जनक का आगमन होता है । वे सीता के निर्वासन के कारण अत्यन्त दुःखी हैं । अरुन्धती के साथ कौशल्या उनसे मिलने आती हैं । कौशल्या और जनक परस्पर सात्वना प्रदान करते हैं । इसी समय अन्य बालकों के साथ लव का प्रवेश होता है । कौशल्या और जनक को उसे देखकर उसे जानने की उत्कण्ठा जागृत होती है । सब आकर उनका अभिवादन करता है । वह अपना परिचय वाल्मीकि के शिष्य के रूप में देता है । विप्र बटु लव को इसी बीच अवशमेघ—अश्व के दर्शन करने के लिए बुलाते हैं । लव वहाँ जाकर अश्व रसकों की घोषणा श्रवण करता है । उसे सुनकर लव को प्रीति आता है और वह अवशमेघ अश्व के घोड़े को पकड़ लेता है ।

पञ्चम अङ्क—लव की बाणियों से सैनिक विचलित हो उठते हैं इसी बीच कुमार चन्द्रकेतु युद्ध क्षेत्र में प्रवेश करते हैं । वे प्रथम दर्शन से ही सारथि सुमित्र से लव की वीरता और शौर्य एवं ओजपूर्ण मुखर्षी की प्रशंसा करते हैं । तदनन्तर दोनों का युद्ध प्रारम्भ होता है । लव

जुम्भकास्त्र का प्रयोग करते हैं। उसे देखकर सुमित्र और चन्द्रकेतु दोनों को विस्मय होता है। युद्ध विराम के बाद दोनों मिलते हैं तथा अनुराग का उदभव होता है। बातचीत में ही सुमित्र रामभद्र की चर्चा करते हैं। तब अपने इस कृत्य (अश्व ग्रहण) में रक्षकों की दर्पपूर्ण 'राक्षसी वाणी' को ही कारण बताते हैं। पश्चात् तब एव चन्द्रकेतु में परस्पर दर्पपूर्ण कथन होता है और दोनों युद्ध क्षेत्र में पुनः उतरने के लिये प्रस्तुत होते हैं।

पठ अङ्क—दोनों वीरों (तब तथा चन्द्रकेतु) के युद्ध का वर्णन एक विद्याधर और उसकी स्त्री के संवाद के रूप में किया गया है। इस युद्ध में वे परस्पर आग्नय, वाहण और वायव्य सस्त्री का प्रयोग कर रहे थे। इसी बीच शम्भूक को मार कर लोटते हुए रामचन्द्र युद्ध स्थल में पहुँचते हैं तथा युद्ध रुक जाता है। तब को देखकर राम वात्सल्य में भर उठते हैं। चन्द्रकेतु तब के द्वारा प्रयुक्त जुम्भकास्त्र के सम्बन्ध में राम को सूचित करते हैं यह ज्ञात कर राम को बड़ा आश्चर्य होता है। तब तक कुश भी प्रवेश करते हैं दोनों राम का अभिवादन करते हैं व राम उनका आलिंगन करते हैं। दोनों बालकों के दर्शन से राम को सन्देह होता है कि क्या ये सीता के पुत्र हैं। कुश और तब से सीता परिस्थान सम्बन्धी रामायण में कतिपय श्लोक श्रवण कर राम की वेदना और भी जागृत हो जाती है। सेना के साथ तब के युद्ध करने का समाचार सुन कर वशिष्ठ वाल्मीकि, जनक, भद्र प्रती और राम की मातायें बहाँ जाती हैं। उनके आने के समाचार से राम को लज्जा व खेद भी होता है और वे बालकों के साथ उनका स्वागत करने भागे आते हैं।

सप्तम अङ्क—एक दिव्य नाटक का अभिनय होता है। परित्यक्ता सीता गंगा में कूद पड़ती हैं। किन्तु एक एक शिशु को मोद में ले कर भागीरथी और पृथ्वी सीता को जल से बाहर ले प्रगट होती हैं। पृथ्वी राम की कठोरता की निन्दा करती हैं गंगा उसका कारण बताती हैं।

दोनों सीता को आदेश देती हैं कि तुम्हें इन मिश्रुओं का तब तक पालन करो जब तक व वाल्मीकि मुनि के सरसण में रहने योग्य बड़े न हो जायें। इन कृपय को वास्तविक समझकर राम शोकवेग से मूर्छित हो जाते हैं। सब नेपथ्य में 'द्वि अरुन्धती हम पृथ्वी और गंगा दोनों पवित्र दल वाली वधू सीता को आशुओं अर्पण कर रही हैं। प्रायः हम अनुग्रहीत करें।' यह सुनाई पड़ता है। अरुन्धती सीता का लेकर प्रविष्ट होती है। सीता स्वामी की परिचर्या कर उन्हें स्वस्थ करती है। वाल्मीकि भी लवकुश को समर्पित करते हैं। इसी बीच लवगामुर को मार कर शत्रुघ्न भी मर जाते हैं। चारों ओर प्रसन्नता का वातावरण छा जाता है।

पात्र परिचय

पुरुष पात्र

मूत्रधार — माटक का प्रारम्भकता
रामच का अयस्क
मट — मूत्रधार का सहयोगी
राम — (रामचन्द्र) अयोध्याधिपति
सूर्यवंशीय राजा।
लक्ष्मण — राम के छोटे भाई
शत्रुघ्न — लक्ष्मण के छोटे भाई
जनक — राम के श्वसुर
अष्टावक्र — एक मुनि
वाल्मीकि — रामायण के रचयिता
सीतावकि — वाल्मीकि का शिष्य
कुशलवौ — राम के पुत्र
चन्द्रकेतु — लक्ष्मण पुत्र

स्त्री पात्र

सीता — राजा जनक की पुत्री
राजा राम की पत्नी
वासन्ती — वन देवता, सीता की
सखी
धात्रेयी — एक ब्रह्मचारिणी
तमसा — एक नदी की अधिष्ठात्री
देवी।
भुरसा — एक नदी की अधिष्ठात्री
देवी।
भागीरथी — गंगा जी
कौशल्या — राम की माता
पृथ्वी — सीता की माता
अरुन्धती — वशिष्ठ मुनि की पत्नी
विद्याधरी — विद्याधर की पत्नी

पुरुष पात्र

स्त्री पात्र

सुमन्त्रः—सारथी

प्रतीहारी—अन्तःपुर की द्वारपालिका

विद्याधरः—देवयानि विशेष

कञ्चुकी—जन्त पुर में रहने वाला

वृद्ध ब्राह्मण

दुमुंख—गुप्तचर

मम्बूक—शूद्र तपस्वी

भुनि कुमार और सैनिक आदि ।

नाटक की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि—उत्तररामचरित कथन रस का नाटक है । कवि अपने कथानक और रस की पृष्ठभूमि को तैयार करना हुआ चलता है । वह दर्शकों के हृदय में—जो कुछ प्रवेश कराना चाहता है, उसकी पृष्ठभूमि पहिले से ही तैयार कर देता है । कवि एक महान् मनोवैज्ञानिक है । जब नाटक प्रारम्भ होता है तो मूल्याधार कहता है कि यह राम के राज्याभिषेक के उत्सव का समय है, किन्तु सभी कर्मचारी शांत और चुप क्यों हैं । नगरी प्रसन्न होने के स्थान पर विषादमग्न सी है । कहीं कोई चहल पहल नहीं । इस मौन और शान्ति का कारण जानने को हम भी उरसुक हो उठते हैं । क्योंकि रामकथा का पूर्व सङ्कार और परिवर्ण होने से हमें ज्ञात होने लगती है कि क्या सीता परिष्ठाप हो चुका ? किन्तु नट सूचना देता है कि घर के लोग ऋष्यशृङ्ग के बाथम में यज्ञ समारोह में सम्मिलित होने के लिए चले गए हैं ।

राम के लिए सामाजिक के हृदय में सहानुभूति पैदा होती है कि १४ वर्ष के बाद वन से लौट आने पर भी वे अपने परिवार के लोगों के मध्य रहने का आनन्द नहीं प्राप्त कर सकते हैं । यही गर्भधारिणी सीता का भी समाचार है । नगरी में कोई उत्सव नहीं, कोई सजावट नहीं, नया नरेश, बेचारे का जीवन नीरस हो गया । कोई भी गुहजन नगर

मे नहीं रहे। सभी बाहर चले गए हैं। इसीलिए सूत्रधार राम का मनोरञ्जन करने के लिए राजभवन आना चाहता है किन्तु वह शब्दों के प्रति बहुत जागरूक रहना चाहता है क्योंकि लोग स्त्री और धाणों के प्रति बड़े दोषदर्शी होते हैं। मोता के प्रति अग्नि परीक्षा हो जाने पर भी उन्हें विश्वास नहीं होता है।

राम और सीता को ऐसी दशा और उनके चारों ओर दुःखद वातावरण और परिस्थितियों की घटा घुमटी देखकर हमारा हृदय कण्ठा से भर जाता है। राम को प्रियतमा बहुत दिनों के बाद मिली थी जो इस समय पूर्णगर्भा भी है—उसी के प्रति लोगों की दुर्भावनाएँ। राम के हृदय को शोकाकुल कर देंगी। उधर बेचारी निर्दोष सीता!

जैसे ही प्रमुख अंक घागे बढ़ता है, हम अपने को विपाद से आवृत और धकेले अश्वकार में पाते हैं। जब हम राम और सीता को एक दूसरे को आनन्दित करने का प्रयत्न करते हुए पाते हैं तो अनुभव होता है कि प्रेमियों का वियोग प्रत्येक दशा में असह्य होता होगा। सीता का भी यही कहना है। हम विचार करने लगते हैं कि यदि कही सीता को अपने भावी परित्याग का संकेत प्राप्त हो जावे तो उनकी क्या दशा हो जायगी? इसी समय अष्टावक्र जी आते हैं। भगवती मोता के पूछने पर कि क्या हम लोगों को भी गुरुजन याद करते हैं, अष्टावक्र कहते हैं कि हे देवि वशिष्ठ ने आपके लिए कहा है—

“हे सौभाग्यवति! भगवती वसुंधरा ने आप को जन्म दिया है, प्रजापति के समान राजा जनक आपके तात हैं और आप उन नृपतियों की कुल बधू हैं जिनके कुल में सूर्य और हम गुरु हैं।” उत्तर० १।९ इस पद्य में सीता की श्रेष्ठता का वर्णन करते हुए वशिष्ठ धीरपुत्र प्रसविनी होने का आशीर्वाद देते हैं। राम के लिए वशिष्ठ ने कुछ भी नहीं कहा। यह दर्शन के लिए बठोर सबेरा है कि राम के भाविकायें (सीता परित्याग) को दिव्य ज्ञान वाले वशिष्ठ जानने हैं अतः उन्हें आशीर्वाद देने में नहीं सम्मिलित किया। हमें राम के प्रति सहानुभूति

और सीता के लिए नय हो जाता है। राम वशिष्ठ के लिए उत्तर देते हैं कि प्रजा के आगमन के लिए मुझे सीता छोड़ने में भी व्यथा न होगी। १।१२॥ हमारा नय दृढ़ हो जाता है और हम सीता के विषय में विविध शक्ति प्राप्त लगते हैं। इसी समय लक्ष्मण मने है और राम के पूर्वज पर कहते हैं कि सीता अग्नि परीक्षा तक के चित्र है। हम राम के साथ चिन्ताकर धारित करने जानते हैं कि जन्म न हो पवित्र का अग्नि आदि क्या पवित्र करेगा। १।१३॥ यदि भय म आनन्द का बादल और व्यथा को झकासी से शान्ति को बढ़ती न जान कहा उत्तर देना था जान है। राम विवाहोत्तर कालीन मुनियोग विवसा का दाद करते हैं। १।१८, १९॥ वे मुनियोग प्रतीति की वर्तमान म पुनरावृत्ति हैं। सीता का अवानक भय होता है कि मुझे ऐसा प्रतीति हो रहा है माना मैं अपने प्रियतम से पुन वृष्य हो रही हूँ। राम १।३३ म लक्ष्मण को चुन कर रहे हैं क्योंकि उन्हें ऐसा प्रतीति हो रहा है मानों प्रिया का विरोध पुन भीट आया है। दर्शक का दुःख शक्ति प्राप्त लगता है और मजानुमति भी बढ़ती है। सीता अब अन्तिम है फलन सा जाती है। उन्हें नियति के काल पर के पीछे किम समानक भविष्य की रचना हो रही है इसका कृत्र भी जान नहीं है। अर्थात् सीता। इसी समय दुर्मुख दयानाथ का भगवान् नमाचार लिए लड़ा है जो सीता से सुकुमार लज्जा के उत्तर प्रजात दगा में टूटता। यह है, भाग्य का खेल—नियति नदी का नाटक। जिसके कारण अर्थात् अर्थात् निर्वोप दुःख के रूप में टाककर झुटने के निचे छोड़ देने जाते हैं। दर्शक—नियति के उत्तर कृत्र हो उठता है। वह चाहता है कि दुर्मुख का मुख गढ़ हो जाए, वह मुक्त हो जाए।

राम के 'विरह' शब्द के साथ ही 'पट्टे' शब्द को सम्बन्धित करता हुआ दूत वह भगवान् धर्मी उपस्थित करदेता है जिसका हमें बहुत पहिने से दर या। रय तैयार है, सीता उस पर चढ़कर लक्ष्मण के साथ वन विहार के लिए चली। उन्हें क्या ज्ञान? दर्शक चिन्ताकर उन्हें दम्पत्युत्पत्ति का

ज्ञान कराने के लिये चाहता है किन्तु इसी समय मदति का पात्र हो जाता है और हम भी निर्दोष को कोसते हुए बुरा हो जाते हैं।

उत्तर का परिवर्तित और परिष्कृत कथानक—कवि ने दोरचरित में स्पष्ट शब्दों में कह दिया है, कि वह आत्मोक्ति रामायण कथानक से रहा है। किन्तु राम के जीवन और कार्यों का जो प्रदर्शन कवि नाटक में करता है वह रामायण की कथावस्तु से अन्तर ग्यता है। उसने सृजन कलाकार की भाँति प्रधानकथानक की वर्णनात्मक कथा को लेकर नाटकीयता के साधों में डालने के लिए मनोऽनुकूल संस्कार किये हैं। इन संस्कारों ने कथा की एक नवीन ही रूप दे दिया है। हम प्रधान-प्रधान विन्दुओं पर विचार करें।

१—नाटक में राम और सीता का पुनर्मिलन दिखाया गया है, जब कि रामायण में राम के बहने और आत्मोक्ति के आदेश देने पर सीता अपने गुप्त चरित्र का प्रमाण देने के लिए प्रयत्न करती हैं तो उनका उदात्त हृदय अस्मान न सह सकने के कारण माना पृथ्वी से हरा मागता है और पृथ्वी के गर्भ में छरण पा भी जाता है। रामायण की कथा दुःखान्त है। किन्तु भारतीय परम्पराानुसार दुःखान्त नाटक सम्भव नहीं, फलतः कवि उसे सुखान्त कर देता है। इसके प्रमाण में इसके पाठ पद्यनुपाय के पाठान्त खण्ड का ४७ वा अध्याय है।

रामस्वामागतां दृष्ट्वा जानकी प्रेन विह्वलान्
साध्वित्वया सहैवानी कुर्वे यज्ञसमापनम् ॥
समागतां वीक्ष्यपत्नी रामचन्द्रस्य कुम्भज
सुवर्णपत्नीं धिक् कृत्वातामधात् धर्म चारिणाम् ॥

रामस्त्वदा यज्ञमध्ये शुशुभे सीतया सह,
वारयानुगतो यद्वच्छरीव सरधूतनः ।
एवं जनेके पुत्र्यासौ हयमेघं त्रयं चरन् त्रैलोक्ये
कीर्तिमतुलां प्रपदेवै सुदुर्लभाम् ॥

२-पद्मपुराण, लव और कुश एवं शत्रुघ्न तथा पुष्कल (भरतपुत्र) जो राम की अश्वरक्षक सेना के सेनापति थे, के बीच एक युद्ध का वर्णन करता है, जिसमें राम पक्ष के सभी वीर पराजित हो गये हैं। बाल्मीकि रामायण इस विषय में मौन है। भवभूति राम पक्ष की ओर से केवल चन्द्रकेतु को उपस्थित करता है। लव और चन्द्रकेतु में समान बल बौरता और जोयं कवि ने दिखाया है। साथ ही दोनों को शीलवान् भी चित्रित किया है।

३-बाल्मीकि रामायण में सीता परित्याग काल में गर्भ के कोई भी चिह्न स्पष्ट नहीं प्रदर्शित किये गये हैं। रामायण के अनुसार जब लक्ष्मण सीता को छोड़कर चल देते हैं तो सीता ऊँचे स्थर से कहरा क्रन्दन करती है। विजयन्त महर्षि बाल्मीकि आते हैं और मधुर शब्दों में सान्त्वना देकर सीता को पुत्रीवत् धपना कर अपने आश्रम में लिवा ले जाते हैं। आश्रमस्थ तापसियों की सीता की देख रेख और सुख का भार विरूप रूप से सौंप दिया जाता है क्योंकि बाल्मीकि जी रघुकुल बधू को पहिचानते हैं और उनके सारे महर्षों से परिचित हैं। महींगी के उपरांत सीता दो बालकों को जन्म देती हैं। उत्तर में भवभूति ने सीता त्याग के समय सीता को पूर्णगर्भा चित्रित किया है जिनका प्रसव काल सन्निकट है। ऐसा करने में भवभूति दर्शकों की सहानुभूति सीता के प्रति अधिक आकर्षित कर सके हैं। लक्ष्मण के छोड़कर जाते ही सीता को प्रसवकाल की वेदना से अत्यन्त पीड़ित दिखाकर कवि ने उन्हें गंगा में कूदते चित्रित किया है। वहीं पर वे दो बालकों को जन्म देती हैं। गंगा और पृथ्वी सीता की देख रेख करती हैं क्योंकि प्रथम अंक में राम ने इसके लिए उनसे निवेदन कर दिया था। सीता पृथ्वी लोक में १२ वर्ष तक रहती हैं। बालक तो दुग्ध छोड़ने के उपरान्त ही बाल्मीकि आश्रम में विद्याभ्यास के लिए भेज दिये गये थे।

४-बाल्मीकि रामायण के अनुसार राम ने सीता त्याग के बहुत दिन बाद शत्रुघ्न को सवनासुर के मारने के लिए भेजा है। शत्रुघ्न

मधुरा जाते हुये एक रात बाल्मीकि आश्रम में ठहरते हैं तथा सीता एवं लवकुश को देखने हैं, पहचान भी लेते हैं। भवभूति ने 'उत्तर' में सीता त्याग और शत्रुघ्न का सबल के बच के लिए मधुरा गमन साथ साथ दिखलाया है।

५—भवभूति ने बाल्मीकि की रामवधा के रूप में कतिपय परिवर्तन अपनी राम के प्रति खड़ा और आदर्श रामचरित के कर्ता होने के कारण किये हैं। जैसे—(घ) भवभूति ने बिना बशिष्ठ और गुरुवनो की सम्मति से त्यागो गई सीता का अकन इस दृग से किया है कि जिससे राम पर आक्षेप न हो सके, इसके लिए उन्होंने बशिष्ठादिकों को अयोध्या से दूर स्थित दिखाया है जिसके कारण अनुमति लेना सम्भव नहीं रहा।

(ब) भवभूति ने उत्तररामचरित के अन्त में सीता को पाताल में प्रेषित कर राम और सीता का पुनर्मिलन उपस्थित किया है। यह उनके भक्त हृदय की उपज है। साथ ही, हिन्दू नाट्यशास्त्र के अनुसार सुखान्त ही उपयुक्त भी था।

उत्तररामचरित का प्रथम अङ्क, जिसका अधिकतम भाग चित्र-दर्शन से व्याप्त है, भवभूति की कल्पना और कला कुशलता का प्रमाण है। इनकी कल्पना शक्ति अद्भुत है। यद्यपि चित्रदर्शन अङ्क का मूलम संकेत कालिदास ने रघुवंश (१४/२५) में दिया है, किन्तु भवभूति ने इसका पूर्ण विकास वर्णनात्मक अयोध्याकरण के रूप में, जो कि कोमल भावनाओं को व्यक्त करने में सक्षम है तथा उत्तम विचारों से भीतप्रोग है एवं मधुरतम गार्हस्थ्य सुखानुभूतियों का निर्धारण है, उपस्थित किया है।

द्वितीय अङ्क में वासन्ती के साथ आश्वेयो के प्रवेश का दृश्य पूर्णतः कवि कल्पना प्रसूत है। इस अंक में प्रकृति चित्रण—दण्डकारण्य के सुन्दर और भयानक दृश्य, पर्वत, वन, नदी और जीव-जन्तुओं के सजीव वर्णन सहृदयों के सामने स्पष्ट चित्र उपस्थित करने में सक्षम और

अनुरूप हैं। भवभूति इस श्रेण में अद्वितीय हैं। तृतीय अङ्क बरुण रग के परिपाक का एकनतम अङ्क है। रससिद्ध कवि की कल्पना और कला की यह मौलिक देव है। कवि मानव मस्तिष्क की कार्य तरणि का पूर्ण ज्ञाता है। मानवीय सभी भावनाओं की अनुभूति में समर्थ कवि, पटनायें नाममान की होने पर भी, गाहस्थ्य जीवन के सुखमय साक्षात्करण में पहले आदर्श प्रेमी और प्रियतमा का मुखावस्था में ही अन्ततः विद्योग विवश विद्योग-चित्रित कर, सहृदयों के हृदयों को द्रवित कर देता है। निरपराध कुसुम बोजस बसेबरो को बष्ट और सन्ताप की धरम सीमा में फँस दिया जाना मानव हृदय की दुर्बलता को पिघला देता है।

✓ अनुप अङ्क जिसमें जनक, कोशित्या, बलिष्ठ और अरुण्यी आपस में आत्मोक्त आश्रम में मिलते दिखाये गये हैं, कवि कल्पना प्रसून है। यह नाटकीय विधान रामायण, पद्मपुराण या अन्य काव्य ग्रन्थों में कहीं भी संकेतित नहीं है।

✓ उत्तररामचरित के उच्च दार्शनिक विचारों और गम्भीर भावों से भरे होने के कारण विदूषक गान का न रसना, कवि का एक विशेष चमक इस दशा में बड़ा हुआ दिखाई देता है।

पञ्चम अङ्क की कथावस्तु यद्यपि भवभूति ने पद्मपुराण से ली है फिर भी उन्होंने अपने मनोनुकूल परिवर्तन और परिवर्धन कर विषय को वह रूपरेखा प्रदान कर दी है कि पूरी कथावस्तु एक नवीन रूप में सामने आती है। कोई भी सेसक भवभूति के पहिले, राष्ट्र के समस्त नेता राम के चरित के विषय में बड़े आलोचना करने का, भवभूति के समान साहस नहीं कर सका है।

“वृद्धास्ते न विचारणीय चरिता” १/३४ में सब ओर १/२७ में आसन्ती ‘अपि बडोर यथा विसते प्रियम्’ राम के चरित की भरपूर आलोचना करते हैं। भवभूति ने—कालिदास की भाँति “अपि स्वदेहात् किमुतेन्द्रियार्थात् यशोयनानां हि यशोगरीय” (रघुवश, १४ वां सर्ग)

सीता परित्याग का प्रश्न हल किया है। छठे अङ्क में कवि ने पद्मपुराण द्वारा कथित कथावस्तु को एक घोर रखकर तब और चन्द्रकेतु के दुपस का, जो कल्पना परिपूर्ण वर्णन किया है, वह प्रशस्तनीय है। उनके लम्बे घोर भट्ठोले समास, घोड़गुरा विशिष्ट पदावली, पाठक के अस्तिष्क को झनझना कर बुद्ध स्पष्ट की व्यक्तता का साक्षात्कार करा देते हैं। राम का अपने दोनों पुत्रों से मिलना, जिन्हें वे पहिचानत भी नहीं हैं, बहुत ही सुन्दरता से चित्रित किया गया है। सुन्दर भार्यों और बिनारों से भरा यह एक कवि द्वारा पुरानी वस्तुओं को नये रूप में रखे जाने का एक धनुषम उदाहरण है।

इन बातों से, कथावस्तु को एक रूपता कही भी सम्भव नहीं होने पाई है। सभी बातें एक ही कथानक की कड़ी में गुथी हुई हैं।

भवभूति ने राम के चरित्र को मानवीचित्र सीधे में ढाला है, जब कि वात्सोकि और कालिदास राम को प्रायः देवता के अवतार के रूप में पृथ्वी के प्राणियों को सुख देने के लिए आया कह कर अति मानव रूप में चित्रित करते हैं। भवभूति के नाटकों में राम-अनुष्य के रूप में अनुष्य की कमजोरियों को लिये हुये-आते हैं। भवभूति अपने पूर्ण कालीनों के अन्ध अडानु होकर अनुकरण मात्र करने वाले नहीं थे और न वह महम् मग्यना के साथ उनकी अवहेलना ही करते थे। साहित्य में प्रस्तुत हुयी भवभूति की वस्तुएँ भौतिकता की पृष्ठभूमि पर आधारित भी प्रतीत होती हैं।

सकुन्तला के सातवें अंक का दृश्य, जब दुष्यन्त अपने पुत्र से निवृत्ता है जिसे वह अपने पुत्र के रूप में अब तक नहीं जान सका है, सोचता है कि यह मेरा पुत्र है या नहीं? किन्तु आत्म प्रमाणों से उसे निश्चित हो जाता है कि यह मेरा ही पुत्र है, यह दृश्य भवभूति ने बहुत ही आकर्षक दृग से उत्तरायमचरित के छठे अंक में आधारित समयानुसार घोर स्थानानुसार परिवर्तन और परिवर्धन के साथ दिखाया है। सप्तम अङ्क की कथावस्तु, जहाँ सीता देवी मुनियों के समक्ष उपस्थित

की गई है, नाटककार ने रामायण में लिया है किन्तु भवभूति की मौलिकता न उसे एक नया ही रूप दे दिया है। मरन के द्वारा शिक्षित मानों अमरायें ही मगा, पृथ्वी और मीना का अभिनय करती हैं। वस्तुतः, रामचरित की भवभूति ने ही सर्व प्रथम नाटकीयता प्रदान की है।

भवभूति से उत्तर काल के लेखक मदैव भवभूति के कृतज्ञ रहेंगे। भवभूति ने राम कथा ऐसे सुन्दर कथानक का प्रवेश साहित्य के नाटकीय क्षेत्रमें करके पथ प्रदर्शन किया। भवभूति का यह कहना कि उसने रामायण की कथा को ऐसा नाटकीय रूप दिया है, जो कि एक सिद्ध कलाकार की सृष्टि की समान रखता है, प्रसत्य नहीं है। उनकी कृतियाँ भारत ही नहीं, विश्व के साहित्यिकी को निमल मानन्द प्रदान करने में सक्षम हैं।

उत्तर रामचरित के कथानक का विकास

नाटक के नाम से ही प्रकट होता है कि यह राम के उत्तर कालीन जीवन चरित से सम्बन्धित है। लका विजय से सीतने और राजगढ़ी पर अयोध्या में आरुह्य ही जाने के बाद की घटनायें इसमें घणित की गई हैं। इस उत्तर भाग के जीवन में सर्व प्रधान और महनीय घटना है सीता का परित्याग—जो उनके व्यक्तिगत और समष्टिगत दोनों जीवनो में अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इसी घटना के आधार पर और बीज पर उनके इस महान नाटक का इतिवृत्त विकसित हुआ है।

सूत्रधार और उसके सहयोगी के प्रथम दृष्ट के सम्वाद यह सिद्ध करते हैं कि सीता की आचार पवित्रता के विषय में अयोध्या के नागरिकों में प्रवाद फैल रहा है, जिससे राजा अभी विल्कुल अपरिचित है।

अष्टावक्र के मन्देन वाला प्रथम दृश्य, जिसमें राजा के लिए अपने सुषों का वसतिदान राजा के कल्याणार्थ करना आदेश कर्तव्य

कहा गया भगवान राम के द्वारा किए गए सीता परित्याग के हेतु पृष्ठभूमि की उपयोगना मात्र कहा जा सकता है जिसमें राम को केवल प्रजा की प्रसन्नता के लिए स्वकीय विशेष सुखों के विनाशक उपेक्षा कर सीता के निर्मल चरित्र का ज्ञान रखते हुए भी सीता परित्याग के लिए कृत निश्चय होना पडा ।

दूसरा दृश्य, जिसमें लक्ष्मण—राम और सीता के विगत जीवन चरित्र के चित्रों के दिखाने का प्रयत्न करते हैं तथा सीता अपने पति से दूर विरह और वियोग सहती है, नाटक में बहण रस का बीज सा होता है । सीता दण्डक जन और भागीरथी को देखने के हेतु प्रयाण करने की प्रबल इच्छा रखती है । राम, सीता परित्याग के विषय में बहुत चिन्ताशील हैं और वे इस उपस्थित अवसर को ही सीता परित्याग का सबसे सहज अवसर समझ कर, निर्दोष पत्नी को उसे बिना सूचना दिये ही परित्यक्त कर देते हैं, इन भेज देते हैं, यह नेता के चरित्र में एक विचारणीय वस्तु है । यह दृश्य इसलिए महत्व पूर्ण है कि यह दो नाट्य प्रयोगों को पूरा करता है । सर्व प्रथम यह भगवान राम के विगत चरित्र के बारे में कुछ स्पष्ट करता है, जिससे महावीरचरित्र से राम के जीवनचरित्र की 'उत्तररामचरित्र' से एक कड़ी जुड़ जाती है । द्वितीय यह दृश्य भगवान राम के दाम्पत्य जीवन का, जो प्रेम और वैभव से भरा अत्यन्त सुखमय है तथा जो राम के विरह में सीता को चित्र वर्णन में भी व्याकुल कर देता है, का निरूपण करता है । दोनों अनन्य प्रेमी हृदय वियोग के भयकर दिनों के शिकार बनते हैं । उनका परस्पर प्राकपण और पवित्र प्रेम घन्य है । इस दृश्य ने दर्शकों को राम के महान त्याग का अनुभव करान में जो वे अपनी प्रजा की प्रसन्नता के लिए करते हैं—बहुत ही सहायता दी है । राम का आदर्श त्याग और उनका महान् विरह तथा उसकी अभिव्यञ्जना इस दृश्य के ही साहाय्य से

सहृदय हृदय में मंगलता से प्रवेश कर जाती है। प्रथम अङ्क सीता व साय की समाप्ति हो जाता है और कार्य की श्राव्य बढ़ाकर द्वितीय अङ्क में लाता है। दर्शक सीता के विषय में विन्तित हो उठता है कि आगे उन्होंने क्या किया ? उनका क्या हुआ ? और प्रार्थना करने लगते हैं कि कोई ईश्वरीय शक्ति उन्हें इस महान विपत्ति में सहारा दे। इन प्रकार से सीता व राम दोनों दर्शकों की सहायुभूति के पात्र हो जाते हैं।

द्वितीय अङ्क में आग्नेयी, जो कि वाल्मीकि आश्रम से घाई है जनस्थान की वन देवी वासन्ती से कहती है कि किस तरह दो बालक जिनके पिता आदि का पना नहीं है अज्ञात स्वर्गीय व्यक्ति से वाल्मीकि आश्रम में उपस्थित किये गये हैं। वाल्मीकि व उनका द्रष्टव्योचित सस्कार किया है। बालकों ने अपनी मेधा शक्ति से सभी आश्रम-छात्रों को पराभूत कर दिया है। वाल्मीकि देवी मकेत से काँव हो गये हैं और राम चरित के गठन में सलग्न हैं। आग्नेयी वासन्ती को यह भी सूचित करती है कि राम ने सीता का परिस्थान कर दिया और भगवन्मेष यज्ञ करने का अनुष्ठान भी किया है। वे शूद्रक बध के लिए अयोध्या से दण्डक वन की ओर प्रस्थित हो चुके हैं। वासन्ती दर्शकों को बताती है कि शम्भूक धववटी में तप कर रहा है परिणाम स्वरूप दर्शक अपने को अग्निम ब्रह्म के लिए उत्सुक पाते हैं। यह वृक्ष प्रथम अङ्क की घटनाओं से पूरे बाग्न वध बाद और अयोध्या में बहुत दूर होन जा रहा है।

नाटककार ने 'यूनिटी आफ टाइम एण्ड प्लेस' का ध्यान बिलकुल ही नहीं रखा है। यह सूचित कर देना आवश्यक है कि संस्कृत नाटक-कारों का बहुमत स्थान और समय की एकता के प्रति बहुत ही कम उत्तरदायी रहा है।

द्वितीय अंक की घटनाएँ सख्या में बहुत ही कम हैं तथा उनका महत्व भी कम है। जहाँ तक कथावस्तु के विकास का सम्बन्ध है,

शम्भूक को दण्ड देना और उसका पुनः देवयोनि में परिवर्तित होना मुख्य कथावस्तु का कोई भाग नहीं है। हाँ, उसका महत्व केवल जनस्थान के वन वैभव की ओर सकेत करने में है, जिससे कवि को अपने प्रकृति प्रेम के प्रदर्शन और वर्णनात्मक शक्ति के प्रयोग करने का अवसर मिला है। सम्भवतः कवि ने इसीलिए इस पात्र को रंगमंच में उपस्थित किया है। शम्भूक का नाटकीय महत्व केवल इतना ही है कि वह आग्नेयी की सूचना और राम के पंचवटी में स्थित होने के बीच एक सम्बन्ध जोड़ देता है।

तृतीय अङ्क जिसमें दो नदियाँ मानवीकृत बात करती हैं कि सीता के दो बालक उत्पन्न हुये हैं जिन्हें वाल्मीकि आश्रम में पहुँचाया जा चुका है तथा सीता पृथ्वी माता के लोक में रहती हैं। वे राम के पंचवटी में आन के कारण अदृश्य रूप में राम के शोकावेग के समय जनस्थान में रहलार्थ उपस्थित रहती हैं। पंचवटी का पूर्व परिचिन दृश्य, कथानक को जहाँ से आग्नेयी ने छोड़ा था, आगे बढ़ाता है। सीता का छाया रूप में राम से मिलन दोनों के वास्तविक पुनर्मिलन के लिए मध्य प्रस्ताव कर देता है। सीता अपने पति के विरह विलापी की सुनती है एवं उनका हृदय प्रभावित हो स्वच्छ हो जाता है। सीता अपने पति की निदोषिता और प्रेम में न्योछावर हो जाती है और मनोमालिन्य निर्मल हो जाता है। सीता का राम के प्रति प्रेम असीमता को प्राप्त करता है। यही इस तृतीय अङ्क का उद्देश्य है। सीता को इस भाँति अपने प्रिय के विरह विलापी की सुनने के लिए छाया रूप से प्रस्तुत करना, अभिज्ञान शाकुन्तलम् की सानुमती अम्बरा के रुमान दुष्यन्त के विदारोपवन में शकुन्तला के प्रति उसके विचार जानने के लिए उपस्थित होने के समान है। शकुन्तला का सर्वोत्कृष्ट प्रतिबिम्ब (सानुमती) दुष्यन्त से शकुन्तला के विषय में उसकी निजी धारणा गनता है और अभिज्ञानवश प्रियतमा त्याग की घटना को चुनकर शकुन्तल। में जाकर कहता है। फलतः शकुन्तला अपने मनोमालिन्य को मुलांकर पुनः पति से मिलने की उत्कण्ठित हो उठती है। लेखक का

यह अत्यन्त सुन्दर सगठन रहा जो उसने सीता को राम से छाया रूप में पचवटी में मिलाया है। यहाँ पर इस दम्पति ने चौदह ग्रीष्मे आनन्द के साथ बितायी थी। यहाँ उन्होंने प्रकृति के दृश्यो तथा पारस्परिक प्रेम का आनन्दोपभोग किया था, इसके लिए कवि की नाट्य कुशलता की हम प्रशंसा करते हैं। पचवटी के विकसित वृक्ष, विहंग कुल-कलरव और लीला निमग्न मृग आदि सीता को स्मृति में छा जाते हैं। राम भी उन पूर्व परिचित दृश्यों को देखकर विह्वल हो उठते हैं तथा सीता का सहवास स्मरण कर चेतनाविहीन हो जाते हैं, सीता के स्वर्ण का अनुभव करते हैं और भावित होत हैं—

इस प्रकार स दोनों के पुनर्मिलन की बाधों दूर कर दी गई हैं।

कुशल नाटककार ने दोनों के मिलन का स्थान, महान् हृष का यहाँ मुख्यतः बाह्योक्ति आश्रम में ही संयोजित किया है। यहाँ कौशल्या, वशिष्ठ, अहधती आदि सभी उपस्थित हैं। ये लोग शृण्वाभूषण के यश आ अयोध्या में लौटकर यही ठहरे हुए थे। भाग्यवश सीता और राम के पुनर्मिलन से सम्बन्धित एवं उत्कृष्ट सभी व्यक्ति यहाँ उपस्थित थे। इस स्थान से बढ़कर सुन्दर और कौन स्थान हो सकता था। चतुर्थ, पञ्चम और षष्ठ अंक की सभी घटनाएँ यह स्थान पाती हैं। यहाँ पर जनक, कौशल्या, राम, लव, कुश, चन्द्रकेतु और सीता आदि सभी का विभिन्न कार्यकलापों वश उपस्थित होना वैविध्य के साथ साथ अत्यन्त कलात्मक हुआ है। यह सम्मिलन मानव भावनाओं के विविध रूपों—प्रेम, शोक, वास्तव्य, क्रोध आदि के साधारणीकरण के साथ साथ सम्पन्न हुआ है। सभी दृश्य बड़ी सफलता और कला के साथ सगठित हुये हैं जो सहृदय को रस सिकत कर देते हैं। सारा अन्तिम अंक पुनर्मिलन की घटनाओं से सम्बद्ध है।

“क्या संविधान का कलात्मक वैशिष्ट्य”

नाटककार भवभूति ने दो नाटकों के निर्माण काल के बीच में (महानीर चरित और उत्तररामचरित) यथेष्ट मध्यान्तर लिया है,

जिसका प्रमाण उत्तररामचरित की पूर्णता है। यह नाटक कवि की श्रेष्ठ प्रतिभा का परिचायक है। उत्तररामचरित के सप्तम अङ्क के बीसवें श्लोक में कवि स्वयं इस बात की स्वीकार करता है कि इस मध्य काल में कवि ने अम्बास और साधना की है। सम्भवतः उसने और भी अन्य रचनायें की होंगी जो हम आज प्राप्त नहीं होती। यहाँ हम भवभूति की उस अमर और रस सिद्ध कृति के बारे में विचार करेंगे, जो प्राचीन और अर्वाचीन दोनों युगों के समालोचकों द्वारा कालिदास की कृतियों की तुलना में रखी जाती रही हैं। भवभूति के कुछ प्रशंसकों का तो यहाँ तक कहना है कि उत्तररामचरित में भवभूति कालिदास से भी आगे बढ़ गये हैं—

“उत्तरे रामचरित भवभूतिविनिष्यते”

भवभूति की कलात्मक विज्ञपताओं की अनक रूपों में देखा जा सकता है—

१—नाटक के नाम से पता चलता है कि यह राम के जीवन के उत्तरार्द्ध से सम्बन्धित है जो राव्याभिषेक और सीता परित्याग से प्रारम्भ होकर उनके पुनर्मिलन पर समाप्त होता है। उत्तर की कथावस्तु और घटनाओं से सिद्ध है कि कवि को अपने पूर्व नाटकों की भाँति कथावस्तु के प्राप्त सातों में कथावस्तु सबन्धी कोई विशेष परिवर्तन या सम्बंधन करने के हेतु परिश्रम नहीं करना पड़ा है।

वित्त सामाजिक के मन में यह प्रश्न उठता है कि सीता ऐसी धर्मपत्नी का त्याग राम ने कैसे किया, जब कि उनके मन में सदेह का अनेक मल सीता अग्नि परीक्षा के समय ही नष्ट हो चुका था, तथा परित्याग के बाद उन्होंने परिस्थितियों के रहते हुये भी सीता को पुनः वैसे स्वीकार किया। इन्हीं प्रश्नों के समाधान में कवि ने अपनी कुशलता प्रदर्शित की है। कालिदास के दुष्यन्त ने अभिज्ञान शाकुन्तल के १७वें अङ्क में शकुन्तला का प्रत्यक्ष अनादर किया था और पुनः जब वे दोनों सप्तम अङ्क मिलते हैं तब शकुन्तला अपने शत्रुन्तला होने का कोई भी

प्रमाण नहीं रखती है, केवल सानुमती का सन्देश और उधर दुष्यन्त का दुर्बल शरीर दोनों के प्रेम के साक्षी है। अभिज्ञान शाकुन्तल के सप्तम अंक में दुष्यन्त शकुन्तला से क्षमा कर देने को कहता है किन्तु शकुन्तला तो उसे पहले से ही क्षमा किये हुए है। शकुन्तला के इस आचरण के लिए कश्यप के आश्रम का स्वर्गीय शान्त वातावरण भी कारण हो सकता है, जहाँ वे सिंह भी शान्त हैं। कश्यप के आश्रम में तो क्षुब्ध सांसारिक वातावरण या जहाँ मत्त गज और भ्रमर अव्यवस्था उत्पन्न कर देते हैं। भवभूति अत्यन्त सीधे सारे ढंग से विषोग और मिलन पसन्द नहीं करते हैं, उनके सामने एक मनोवैज्ञानिक समस्या थी, जिसका समाधान भवभूति ने अपने ढंग से प्रथम तीन अंकों में किया है। शेष चार अंकों में उन घटनाओं की उत्पत्ति हुई कहियाँ हैं जो मिसन कराती हैं।

—२—भवभूति ने प्रथम अंक की रचना में कोई विशेष नाटकीय कला नहीं प्रदर्शित की। इस अंक में अन्तिम पुनर्मिलन के कुछ कलात्मक संकेत प्राप्त होते हैं। इस अंक के प्रारम्भ में कुछ ऐसे मार्मिक तत्व हैं जिनसे प्रकट होता है कि राम सीता का परित्याग कर देने। सूत्रधार इस तथ्य की (प्रथम अंक, छठा श्लोक) हमें पहले ही सूचित कर देता है। अपवाद का वातावरण था। जब यह अपवाद राम के पास पहुँचता है तो वे सीता परित्याग का निश्चय कर लेते हैं। इस अपवाद और परित्याग सम्बन्धी अनेक बातें नाटककार अपवाद को राम के पास पहुँचने से पहले दर्शकों को बता देना चाहता है। वे तथ्य निम्न-लिखित हैं—

(१) राम को स्वयं अपवाद पर प्रतिश्वास है (१/१२, १४) जब लक्ष्मण चित्रावली (प्रथम अंक) का विवेचन सीता और राम से करते हैं तो कवि को अग्नि परीक्षा दृश्य के विवेचन के समय सीता की पवित्रता के विषय में कहने का अवसर प्राप्त हो जाता है।

२—राम सीता को अपवाद के कारण नहीं छोड़ रहे हैं किन्तु

जनता के प्रति अपने सर्वोच्च कर्तव्य का ध्यान रखकर ही सीता परित्याग कर रहे हैं। उनके कार्य जनता के आक्षेप से शून्य होने चाहिये। कर्तव्य के इस महान् आदर्श को ध्यान में रखकर राम सब कुछ बलिदान करने के लिए तत्पर हो जाते हैं (१।१२, ४१, ४२, ४४) राम अपने प्रथम भाषण में ही (१।७, ८) यह स्पष्ट कह देते हैं कि वे प्रजा के लिए सब कुछ छोड़ने के लिए तैयार हैं। उनका यह कथन सहृदयों को दृष्टा कुलित कर देता है।

३—सीता, राम के इस महान् आदर्श को जानती है और यदि आवश्यकता चाहे तो वे स्वयं ही सेवक के रूप में जनवास स्वीकार कर सकती हैं (१।१२)। सीता परित्यक्त हुयी, यह कोई महान् घटना नहीं। महान् घटना तो यह है कि वे ऐसी निर्मम दशा में खानी गई (१।४९) कि उन्हें यह अवसर ही न प्राप्त हो सका कि अपना प्रसव कहीं और कैसे करें।

४—राम एक नये राजा हैं (१।८)। राज्य का सारा भार उन पर है। प्रत्येक नया नियुक्त व्यक्ति राम के उत्तरदायित्व, उत्तम और सतर्कता का अनुभव कर सकता है, जो उसके कर्तव्यों के कारण प्रायः सामने आती हैं। राम एकाकी हैं (१।३)। उनके गुरुजन, जो मंत्रणा दे सकते थे, दूर हैं (१।६)।

५—विश्व दृश्य यह सिद्ध करता है कि राम और सीता परस्पर कितना स्नेह करते हैं। वे विश्व में भी वियोग नहीं सह सकते (१।२७, ३०, ३३)।

६—भवभूति ने प्रथम अंक में ही सप्तम अंक के विषय में विचार किया है और गर्भ व्यापार (१।१०, ३३) के साथ साथ जूझरू का वर्णन (१।१५) जो पुत्र की पहचान में काम देता है तथा भागीरथी (१।२३) एवं पृथ्वी (१।५१) का भी संकेत दे दिया है। ये दोनों आगे सीता की रक्षा का कार्य समान रूप से करती हैं।

४—प्रथम श्रक की भाषा समृद्ध और काव्यमय है। कोई भी ऐसा वाक्य या शब्द नहीं है जिसके लिए हम कह सकें कि इसे ऐसा न होना चाहिये। एक भी शब्द ऐसा नहीं है जो गम्भीर भाव न व्यक्त करता हो। शब्द मानव हृदय को स्पर्श करने की क्षमता और शक्ति रखते हैं।

५—द्वितीय और तृतीय श्रक में हम भवभूति की एक दूसरे रूप में ही पाते हैं। शम्भूक की कथा वाल्मीकि रामायण और पद्मपुराण में है। किन्तु उन दोनों श्रकों में यह स्थूल काव्यात्मक और कलात्मक नहीं है। भवभूति के 'उत्तर' के दूसरे और तीसरे अङ्क में जो वैशिष्ट्य है वह अद्वितीय है। भवभूति के यह श्रक पूर्णतया मौलिक है इसमें एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक कारण निहित है। रामके चरित्र में कोई विशेष परिवर्तन और विकास नहीं है। केवल उनकी कस्या विषय और पथवटी दशरथ में उभटने वाली। सीता एक नतिशील भावधारा में अटती है। वे पति की उपस्थिति और पति के बिनापों से प्रभावित होती हैं तथा जन्म की लम्बे खरम भावना के लिये जा पहुँचती हैं। बहुत से मनोवैज्ञानिक खड़ाब उताव भावा में जाने हैं। तृतीय श्रक के सातवें श्लोक में सीता राम के प्रति गम्भीर काव्यिक भावा की अनुभूति करती है। वह राम की आर्ष पुन कहन में अगन का असमय पाती है और 'राजा' कहती है। ३।४६ में वह अभिव्यक्त करती है कि उनका हृदय राम के प्रति निर्मल है क्योंकि उन्होंने अभी कुछ काल पहले राम की दशा देखी है उनकी बातों और विनम्र क्षमा प्रार्थना सुनी। वस्तुतः सीता को यह धागा नहीं थी कि राम क्षमा प्रार्थी होंगे। सीता उन्हें क्षमा करती हैं। सीता का यह ज्ञान न था कि राम यह नहीं जानते कि उनकी परनी जीवित है और उन्हें अपने अग्रगण्य की क्षमा भी मिल जायगी। कवि की विशेषता यह है कि वह सीता की सदैव एक आदर्श प्रेमिका और पत्नी के ही रूप में उपस्थित करता है, न कि पति से अग्रसह नायिका के रूप में। इस सीता के उज्ज्वल चरित्र के तीन मुख्य व्यापार प्रम हैं—

१—राम की दृष्टि और निष्कलुष दल सीता शीघ्रता से सहायता

के लिए भागे जाती है (३।१०), किन्तु थोड़ा सा प्रतिविम्बित होते ही पुनः हो जाती है (३।१२)। उनका यह पुनः होना भाग्य की दोष देने के साथ होता है (३।२२)। सीता को विश्वास हो जाता है कि राम ने उन्हें भुला नहीं दिया है। परिणाम एक महान रहस्य है।

२—द्वितीय दशा में सीता एक रव और भागे बड़ी हुई है। जब वासन्ती राम की स्वकीय स्त्री के प्रति निर्दय व्यवहार करने के कारण बुरा भला कहती है, तब सीता ऐसी आदर्श नारी का प्रतिनिधित्व करती है, जो अपने पति के पक्ष में पति की निन्दा करने वाली वासन्ती का निवारण करती है (३।२६, २७)। अपनी चरम सीमा में यह बात तब पहुँच जाती है जब सीता, राम के लिए अपने स्वाभिमान का उन्मूलन कर देती है (३।४०) लेकिन लमसा का कथन (३।४२) सीता को उसकी वास्तविक दशा का ध्यान करा देता है।

३—इसके पश्चात् एक द्वितीय प्रतिक्रियात्मक अवस्था आती है (३।४३, ४४), जो प्रथम अवस्था से अधिक समन्वित नहीं है। इसके पीछे ही एक उपप्रतिक्रिया होती है जबकि सीता को ज्ञात होता है कि उसका पति उसे पहले जैसा ही स्नेह करता है और यहाँ तक कि वह किसी अन्य स्त्री को स्नेह नहीं दे सकता। फलतः उसने द्वितीय विवाह भी नहीं किया है। यहाँ दम्पति का घातृमय मिलन पूर्ण हो जाता है (३।४६)। यह स्पष्ट है कि एक कवि मानव हृदय की गहराई में जितना ही उतर सकता है और आरम्भ से ही अन्त का एक परिणाम निकाल लेता है, उतना ही महान कलाकार है क्योंकि उसमें समन्वितता है। ऐसी ही मानवीय भावनायें नाटक के प्रत्येक पृष्ठ में पाई जाती हैं।

उत्तर रामचरित के छठे अंक का परिचय दुःख भवभूति ने एक बहुत ही प्रतिभावान और यथार्थ मनोवैज्ञानिक के रूप में विनित किया है। कवि के नाटक के अन्तिम अंकों में छठा अंक महान है। इस अंक के लिए लेखक द्वितीय अंक के विष्कम्भक से ही भूमिका निर्माण करता रहा है। यहाँ हम प्रथम बार अवलोकन यज्ञ के विषय में सुनते हैं।

राम इस वस्तु को ३४६ म दृढ़ करते हैं। चौथे अंक के अन्त में हम भाष्य का प्रत्यक्ष देखते हैं। ६१५ में पिता और पुत्र में दृष्टि की समता भाष्यमंजनक है। महं शक बहुत ही कलात्मक है और कालिदास के शाकुन्तलम् के सप्तम अंक से मिलता है। स्वीकृति की कीनूहलता बड़ी उत्सुकता के साथ अन्तिम अंक के अन्त तक बनाई रखी गई है।

उत्तर रामचरित के कुछ अन्य गुण

उत्तर रामचरित भवभूति की सर्वोत्कृष्ट कला का सुन्दर निदर्शन है। अपने गुणों में यह नाटक शास्त्र जगत की सुन्दरतम सृष्टियों में एक है। यदि हम उत्तररामचरित के विष्कम्भकों की तुलना महावीर चरित और मालती माघव से करते हैं तो हम कवि की एक प्रेम बड़ी हुई सफलता की पाते हैं। उत्तर रामचरित में उसने विष्कम्भकों का महत्त्वपूर्ण नाटकीय व्यवहार किया है। महावीरचरित और मालतीमाघव में एक ही व्यक्ति घटो भाषण करता रहता है और वह यह भी बनलाना है कि वह कौन है? और क्या कर रहा है। उत्तर रामचरित के विष्कम्भकों में पात्र सवादों में सूचनाएँ दे देते हैं और सामाजिक इस बात का नहीं परखता है कि वे सूचना देग के लिए हैं। उत्तर रामचरित के द्वितीय और तृतीय विष्कम्भक अत्यन्त सुन्दर हैं, जिनमें एक भी शब्द व्यर्थ का नहीं है और जो पूर्णतः स्वाभाविक भी हैं।

भवभूति के उत्तर में नाटकीय विपरीत लक्षणा के कुछ श्लाघ्य विकास देखते ही जगत है। चित्र दान अंक में जब राम और सीता पूर्वानुभूत दुःखों का स्मरण कर आनन्द ल रहे हैं वे चित्रों की ओर, जो भूतकाल के स्मृति चिन्ह हैं तथा जिनका उपयोग वर्तमान में आनन्द लना है छोड़ा बहुत देखते हैं। सामाजिक परवाद की बात पहले से ही सुने हुए होते हैं (११६) और उन दोनों के आग्राकाश पर उमड़ते हुए दुःख के काले बादलों को देखते हैं। राम उस समय भी (११२३) कुछ दुःख भरे सकत करते हैं और अपनी सोई हुई पत्नी के पास (११३८) न

जाने क्या-क्या विद्योत्त विषयक बातें सोचने हैं। उसी समय प्रतीहारी कहती है 'भा गया' यह सब दशको पर प्रभाव डालन है।

सेलक ने १२ वर्ष दीर्घ कालीन अन्तर को जो प्रथम और द्वितीय अंक के बीच में है, अत्यन्त कुशलता से मेलु द्वारा साँपा है। यह विचारणीय है कि वह अनेक प्रकार से एतत् सम्बन्धी तथ्यों को हम समझाते हैं। द्वितीय अंक का प्रकृति चित्रण (२।२७) और युवक मयूरो की उपस्थिति (३।१९, २०, २१), गज के शावक की पूर्ण युवावस्था (३।१९, १७) इत्यादि संकेत देते हैं कि इस द्वादश वर्ष के समय में अनेक परिवर्तन और विकास हुये हैं। व्यक्तिगत में और म्याना में भी विविध परिवर्तन हुये हैं। जनक राज्य छोड़ चुके हैं (४।९)। लवणासुर मारा जा चुका है। ऋष्यशृंग का द्वादश वर्षीय यज्ञ भी समाप्त हो चुका है किन्तु पर्वत वैसे ही (२।२७) स्थित है, उनमें कोई परिवर्तन नहीं दिखाई देता है।

उत्तर के दोष

अनेक अष्टतम्यों के साथ-साथ उत्तर में कुछ दोष भी हैं, जिनका संकेत अनेक समालोचकों ने दिया है। उनके कुछ प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं—

१—कुछ समालोचकों का कहना है कि भवभूति की भाषा समीत रहित और भारी है। उसमें लम्बे-लम्बे वर्णों और लम्बे लम्बे समासों का प्रयोग खुलकर किया गया है। यह पञ्चम और षष्ठ अंक में विशेषकर देखा जा सकता है।

२—भवभूति की कला का वैशिष्ट्य कि विषय में कुछ बातें छटकने वाली सामने आती हैं जैसे—

(अ) उत्तर की अस्तावना में सूत्रधार कहता है 'एषोऽहं कार्यवशात् प्रायोदकः . . . ' यह कथन दोषपूर्ण है क्योंकि अभिनय प्रयोध्यावासी के प्रवेश के साथ ही प्रारम्भ हो जाता है। उचित यह था कि अस्तावना की समाप्ति के बाद और सूत्रधार के अंगवस्त्र छोड़ देने के बाद अभिनय

प्रारम्भ होता । धनञ्जय आदि नाट्यशास्त्रियों के अनुसार यह प्रस्तावना दोषपूर्ण है ।

(ब) तत्पश्चात् '(प्रविश्य) नट — भाव प्रेषिताहि इत. स्वगूहान् महाराजेन सखा समर मुहुर . ' यह भी दोषपूर्ण है । क्योंकि प्रस्तावना के बाद नर का प्रवेश न होना चाहिए । पुनः नट सूत्रधार की 'भाव' कहता है और सूत्रधार उस 'भारिष' आदि कहता है । भाव, भारिष आदि शब्द केवल प्रस्तावना में ही प्रयुक्त किये जा सकते हैं । यहाँ यह नहीं कह सकते कि अभी प्रस्तावना समाप्त नहीं हुई, क्योंकि आगे ही किमिति विद्यान्त चारणानि चत्वर स्थानानि, वैदेशिकोऽस्मि इति वृत्तामि ।'

(स) सूत्रधार पूछता है 'किमिति विद्यान्त चारणानि । नट उत्तर देता है प्रेषिताहि इत मातर' यह अनुपयुक्त है । क्योंकि वशिष्ठादिका की उपस्थिति या अनुपस्थिति संगीत आदि के प्रारम्भ और समाप्ति से संबंध नहीं रखती । उनका संगीत से क्या सम्बन्ध ? कवि तो कवय सीता परित्याग के समय उन्हें दूर रखना चाहता है, जिसकी सूचना वह दशका को देता है किन्तु सूचना रमयच के अनुपयुक्त है ।

(द) नला वशिष्ठ ने यह भी दावा है कि वशिष्ठ आदि ऋष्यश्रु गमाथम गये हैं और वहा से अष्टावक्र के द्वारा सदाश भेजत हैं कि 'वत्से कठार गर्भेति नानीतासि' यही पर चिन्तनीय है कि उसी दिन प्रातः उनकी सास गई है और अष्टावक्र उसी दिन अयोध्या शीपहर न पश्चात् पहुँच जाते हैं, तथा सीता भी शीपहर के बाद ही परित्यक्त हुई है एवं शीपहर के बाद ही वे बच्चों का प्रसव करती हैं । यदि ऐसा बात है तो माताओं कुछ घटे पूर्व सन्निकट प्रसवा सीता का जान जाती और उसे छोड़कर न जाती । क्योंकि तेरह वर्ष न बाद तो वे मिली थीं तथा सभी माताओं की सीता अत्यंत प्रिय थी । प्रसवोपरांत वे यज्ञ में जाती है ।

(य) वशिष्ठ ने राम की सदाश अष्टावक्र के द्वारा आदेश रूप में भेजा है । वे जाते समय स्वयं अयोध्या में क्यों नहीं कह गये । वशिष्ठ की

यह भूल विचित्र है तथा वशिष्ठ का यह कहना भी 'जामातृ यज्ञेन न च उपयुक्त नही है ; क्योंकि इससे राम की अयोग्यता प्रकट हानी है । यह लेखक की त्रुटि है ।

(२) सका से लीटने के बाद केवल १४ दिन उत्सव हुए और १५वें दिन वशिष्ठ आदि ऋष्य शृंग के यहाँ गये । उसी दिन अष्टावक आये और सीता के पुत्र भी उत्पन्न हुये । सीता, राम के पास केवल १५ दिन ही अयोध्या में रही, तब कैसे सीता को गर्भ धारण हुआ और बालक हुये । इस विषय में कवि मौन है । यह त्रुटि छप्प नहीं कही जा सकती ।

(३) सप्तम अंक में वास्मोकि कहते हैं कि शत्रुघ्न लवणामुर को मार कर धारहे हैं । 'उत्सातलवणो मधुरेश्वरः प्राप्तः...' लवणामुर के ऊपर चढ़ाई १२ वर्ष पहले प्रारम्भ हुई थी, जिसकी सूचना हमें प्रथम अंक में प्राप्त होती है । प्रश्न सामने आता है कि क्या बारह वर्ष तक अनवरत युद्ध होता रहा ? और राजस पर विजय नहीं मिली । तब अक्षमेघ का प्रारम्भ कैसे हुआ, जो सभी शत्रुओं के हरा देने पर ही हो सकता है । यह भी एक बड़ी त्रुटि है ।

१-शब्द, वाक्य और पद्य को पुनरुक्त करने की प्रवृत्ति अवभूति में अधिक पाई जाती है । नाटक में विनोद के लिए कोई स्थान नहीं । अवभूति का विनोद जो कुछ है वह मस्तिष्क सम्बन्धी है । अवभूति के नाट्य में हास्य की बर्मी का कारण यह है कि लेखक अपने विषय को प्रायः गम्भीरता और दार्शनिकता से लेता है । वह समझता है कि उसे कुछ शिक्षा देनी है ।

४-अवभूति अपनी प्रदर्शन की प्रवृत्ति को रोक नहीं पाये हैं और वहीं बड़ी इसके लिए उन्होंने विशेष परिश्रम किया है । अक्षेप नाटक में रस वस्तुतः उपार्थ है किन्तु इसकी अभिव्यक्ति में कृत्रिमता धा गई है । राम के सम्बादों में सदैव इसका विवेचन होता रहता है । बालिदास की भाँति उनका रस व्यर्थ नहीं है ।

भवभूति की शैली

भवभूति की रचना के सभी अंगों को पढ़ने के पश्चात् उनकी शैली के विषय में जानना सरल हो जाता है। संस्कृत रचनाकारों की तीन शैलियाँ प्राचीन पण्डितों में वर्गीकृत थीं। पाचाली, गौडी, और वैदर्भी। इनमें वैदर्भी शैली सबसे सरल होती है। महाकवि कामिदास इसी वैदर्भी शैली के कर्तृ के और उन्होंने अपने सभी ग्रन्थ इसी शैली में लिखे, किन्तु भवभूति का गौडी और वैदर्भी दोनों शैलियों पर समान प्रभाव पड़ा। उनकी वैदर्भी शैली के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

बामन और सरस बाबो की व्यञ्जना उनकी रचनाओं में स्थान स्थान पर मिलती हैं। जब राम वण्डवचन में जन देवता वासन्ती से मिलते हैं तो वह उन्हें कितने सुन्दर और शार्मिक शब्दों में उल्लेख करता है—

स्वं जीविर्न स्वममि मे हृदयं द्वितीयं

त्वं कौमुदी नयनोरमृतं द्रवम् ।

इत्यादिभिः प्रियशब्दैरनुसृत्य मुग्धा

सामेव शान्तमपरा किमिहोत्तरेण ॥ (१/३६)

तुम्ही मेरा जीवन हो तुम्ही मेरा दूसरा हृदय हो, तुम मेरे नेत्रों की चदिनी हो और तुम मेरी रीढ़ में समुत्त हो, यदि तौ उत्तर की बातें कह कर पहले तो आपन उस मुग्धा को बहनाया और बाद में जान हीमिये कहने से क्या लाभ ?

राम सीता को निच दिखाते हुए कहते हैं—

म्लानस्य जीवकुसुमस्य प्रिकासनानि

सन्तर्पणानि सकलेन्द्रिय मोहनानि ।

एतानि ते वचनानि सरोरुहाक्षि

कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि ॥ (१/३६)

तुम्हारे ये मधुर वचन ही मेरे मुरझाए हुए जीवन कुसुमों को सिसाने वाले हैं, ये मुझको प्रसन्न करते हैं और मेरी इन्द्रियों को वृत्त करते हैं।

वे मेरे कानों के लिए अमृत के समान हैं और मस्तिष्क के लिए मोषण के समान ।

सीता हथो सीता को देख राम के मन में उमड़ते हुए भावों की व्यञ्जना देखिए—

इयं गोद्वे लक्ष्मीरियममनवतिर्नयनयो—

रसावस्था स्पर्शा वपुषि दहलश्चन्दन रसः ।

अयं बाहु बल्ले शिशिर मसृणो मौक्तिक सर

किमस्या न प्रेयो यदि परम सहयस्तु न विरहः ॥ (१/१८)

यह मेरे घर की लक्ष्मी है, मेरी छातों के लिए घट्टन रूपी काजल के समान है, मेरे के लिए उसका स्पर्श चन्दन के रस के समान है । मेरे घले में पड़ी हुई उसकी ओह ठण्डे और चिकने मोतियों की माला के समान है । इसकी बोनखी वस्तु मुझ प्रिय नहीं है ? वस, इसका विरह ही मैं सहन नहीं कर सकता ।

इस प्रकार वैदर्भी रीति के अनेक सरल और सुन्दर उदाहरण हमको मिलते हैं । भवभूति ने बदलती हुई रीतियों का प्रयोग बड़ी शीघ्रता और कुशलता से किया है । एक ही श्लोक में हमको गौड़ी और वैदर्भी दोनों रीतियों के उदाहरण मिल जाते हैं—एक ही श्लोक में कोमल भाव और बोर रस की व्यञ्जना दोनों के उदाहरण देखिये—

यथेन्द्रानन्दं प्रजति समुपोढे शुमुदिनी

तथैवाग्निम् दृष्टिमम बल्लहवाम पुनरयम् ।

महत्कारम् र वचणित गुणम् जत गुरु धन—

धृत प्रमा बाहुविकष्य विकरालप्रण मुर ॥ (१/२९)

उत्तररामचरित के इस श्लोक में हमको सख के मन में होने वाले वन्तर्द्वन्द का उदाहरण मिलता है ।

जिस प्रकार पूर्ण चन्द्र ने उदित होने परेक्ष्मुदिनी सिल उठती है उसी प्रकार मेरे नेत्र भी इसकी देखकर प्रसन्न हो रहे हैं, किन्तु मेरी यह मुआ पृष्ठ करने की व्याकुल हो रही है, जिसने भीषण धावाव करने

वाले धनुष को धारण कर रखा है और जो भयङ्कर घोर रस से भर रही है ।

गोड़ी रीति के तो भवभूति धाचायें ही हैं । इस रीति के उदाहरण उनके सब नाटकों में मिलते हैं । वही रामन्ती जो राम को उनाहना देते समय कोमलकान्त पदावली का प्रयोग करती है, दण्डकारण्य की भीषणता का वर्णन इन शब्दों में करती है—

कण्डूलद्विप गण्डपिण्ड कपणोत्कम्पेन संपातिभिः—

धर्म स्तम्भिन धन्धनैः स्य दुसुमैरदन्ति गोदावरीम् ।

झायापगिकरमाण चिपिकरगुरा व्याकूट कीटत्वचः ।

कूजत्क्रान्त कपोल कुम्कुटकुन्ताः कूने कुचायद्रुमा ॥ (३६)

उपयुक्त पद्य में भवभूति ने धनुषास और समास का समतुल्य दिखाने में अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया है । श्लोक की पढ़ते ही दण्डकारण्य में गोदावरी तट का दृश्य चित्रित हो उठता है । पञ्चम अंक में सब के पराक्रम का वर्णन करते हुए शब्दकेतु युद्धस्थल का वर्णन करता है—

आगजगिद्विजुल्लुङ्गारघटानिस्तीर्ण कर्णज्वरं,

व्यानिर्घोषममन्ददुन्दुभिरधैराध्मातमुत्तम्भयन् ।

घेल्लद्भैरवदण्डमुखनिकरैर्योरो विधत्तेभुयं,

तृप्यत्कालकरालवक्त्रविधसञ्ज्ञाकीर्णमाणाभिध ॥५॥

अपने धनुष की डोरी खींचकर जब सब टकार करता है तो पर्वत कन्दराओं में गर्जने वाले हाथियों के बानों में दर्द होने लगता है । बजते हुए नगाडों और कट कर गिरते हुए दण्डमुखों के साथ वह शब्द मिल रहा है । बिखरे छटपटाते कण्ठों से व्याप्त पृथ्वी ऐसी लगती है मानो मृत्यु के मुख से छूटकर मृत्यु के भोजन के भाग इधर उधर बिखर गए हैं ।

भवभूति की गोड़ी ढाली का एक उत्तम उदाहरण उत्तररामचरित

के छोटे अक्षर में विद्याधर के द्वारा अपनी पत्नी से सब घोर चन्द्रवैतु के युद्ध का वर्णन है—

रणत्करणमङ्गणत्वग्णितकिङ्किणीकं धनु-

ध्वङ्द्रुगुणाटनीकृत कराल कोलाहलम् ।

चित्तय किरताः शरानविगत पुनः शून्यो-

र्विचित्रमभिवर्तत भुवनभीममायोधनम् ॥

यह भवभूति की शैली की ही विशेषता है कि भावानुसार छन्दों का प्रयोग करते हैं। उत्तररामचरित में उन्होंने शिखरिणा छन्द का विशद प्रयोग किया है जो वरुण रस के भावों की अभिव्यञ्जना के लिए सहायक छन्द है।

यह तो भवभूति की कविता शैली के विषय में अभी तक विवेचन किया गया, भवभूति की गद्य शैली भी अत्यन्त प्रौढ़, परिमार्जित और दुम्ह है। भवभूति के गद्य को देखकर ऐसा ज्ञात होता है कि भवभूति उस काल के हैं जबकि दुम्हों के आशयानुसार 'प्राज्ञ समानभूयस्त्वन्' अज्ञ और सचास ही गद्य के प्राण तथा कठिन गद्य ही ध्येष्ट माना जाता था। गद्य का प्रयोग करने में भवभूति में तन्त्रे तन्त्रे समासों और वाक्यों से काम लिया है, किन्तु भावों की तीव्रता तथा कोमल भावों की अभिव्यञ्जना में उन्होंने सरल गद्य का भी प्रयोग किया है। उत्तररामचरित में राम के विषय का देखकर सीता कहती है—'अहा बलवदनीमात्पल श्यामलस्निग्ध ममृण्मासलेन देह मीमांसेन विस्मय-स्तिमितज्ञानदृश्यमानमौष्ममुन्दर श्री रत्नाक्षर सन्धितशर गरासन शिखरमुग्धमुल्लमडन आर्यपुत्र आनिविन ।'

भवभूति की शैली का अध्ययन करने समय हमें उनके इस कथन को सामने रखना होगा, जो उन्होंने लेखन का आदर्श स्वीकार किया है—

यत्प्रादृत्यमुदारता च वचमां यच्चार्यतो गौरवम् ।

तच्चेदन्ति तनस्तदेव गमकं पादित्य वैदग्ध्योः ॥

भाषा की अच्छी जानकारी और विभिन्न शैलियों का सफल प्रयोग तथा अर्थ की गम्भीरता ही किसी की विद्वत्ता और बुद्धिमानी के लक्षण हैं ।

मवभूति का प्रकृति-चित्रण ✓

प्रकृति-नटी चिरकाल से मानव की सगिनो बनकर अपने विविध मतरंगों आश्चर्यक उपादानों द्वारा उसके जीवन में युग्मित्रणकर एक होनी रही है । कभी कभी वह वन्य-मानव को जननी बनकर अपनी सुलह एवं स्निग्ध पाह में आश्रय देती रही है, तो कभी सृष्टि-कर्ता की अनूप छवियाँ अपने में समाहित करके अपनी घोर सृष्टि को आकर्षित करती हुई विधाना की विधायिनी शक्ति का अभ्यास देती रही है तो कभी सहृदयों को सहजरी के रूप में अपने मनोहर हावभावों से रिझाती हुई मानव की कानिदास और मवभूति जैसी विभूतियों की प्रदायिनी बनती रही है । यही कारण है कि हमारा आदि-काव्य—

‘मा निषाद् प्रतिष्ठास्त्वमगमः शाश्वती समा,
यत् क्रांष्टमिथुनादेवमवधीः काममोहितम् ।’

के रूप में प्रकृति व मृदु अश्वत्थ में बदला के स्रोत के साथ प्रकट हुआ था । प्रकृति व इस अमृतिम सोन्दर्य पर ही रोम कर आंग्ल कवि शायरन Byron कह उठा है—

‘I love not the man less
But nature more.’

महाकवि Wordsworth तो प्रकृति को आनन्दमय ही मानते हैं । पर्वतों की उतुङ्ग थसलायें और निर्मरों का यादक सगीत उन्हें आनन्दाप्लावित हो दिखाई देता है—

‘There was joy in the mountains
There was joy in the fountains.’

हिन्दी काव्य के Wordsworth कवि सुमित्रानन्दन पन्त तो
मत्तना-मोन्दर्य को भी प्राकृतिक सुपमा पर न्योछावर कर देते हैं—

‘छोड़ द्रुमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भा मया
थाले तेरे थाल जाल में
कैसे उलझा दूँ लोचन ।

भूल अभी मे इन्म लग को ॥’

मानव का दृष्टि के आदि से ही प्रकृति ही तन्तु-पट धँसा सम्बन्ध
रहा है। हमारा सारा साहित्य प्रकृति के रमणीय प्रञ्चल में विरचित
हुआ है। हृदयगत मनोभावों का प्रबल हो उठन पर मानव का प्रकृति से
तादात्म्य अधिकाधिक हा जाता है। मानव की दृष्टि में प्रकृति का
संवेदनशील स्वरूप ही हिन्दी साहित्य को ‘छायावाद’ जैसी वस्तु ब
सका है।

मानव का मुख धुल में प्रकृति महचगी बन कर तदरूप हो जाती
है। प्रातःकालीन मलय-समीर, पक्षियों का नीहों में मृदु-नलरव, कायल
की काकनी धीरे धमोहा की ‘धो कहां’, शलिवृट का गुन-गुन की
मूक भाषा में मृदु-मगीन प्रसूनों की मादक सुरभि, मृगियों का कल कल
निनाद, मृगनाइकों की हृदयहारी कीहार्थे कलिकाओं पर लक्ष्मण
की भिन्नभिन्नाने पाँछ भाषाएँ, सेना में फैली दूर दूर तक हरीतिमा,
ऊँचा का आन्त दुकूल, दिनमणि की रमत रश्मियों का मृदु-चुम्बन से
हिमाच्छादित शैल-श्रेणियों की इन्द्र धनुष सा बिना घतीव प्रमोद प्रदान
करता है तो चिन्ताकुल मानस में प्रकृति के मनोरमक उपारदान वृश्चिक
ब्रह्म बन प्राग है। इन्म उन क मयोग में जो प्रकृति कलि-निवृज बन
जाती है, विभाग की प्राणाघातिनी मनाध्यथा बिनु गोपाल वरिन मई
‘जै’ का कथन सभी प्रकृति का लिए करवा देनी है। मुख की अवस्था
में जो मध सुरति-म्यानि निवारक होते हैं तथा प्रिय-विशेष में उन मेघों
की ही दूत कर्म करना पड़ता है।

भग्या, बेलि, जनबिहार, तपभूमि, कृषिकर्म आदि कार्यों में प्रकृति से हमारा सयोग होता रहा है। मानवमात्र को अपनी म्निग्ध एवं सुसुद कोष्ठ प्रदायिनी-जननी वन्य-मानव से लेकर आधुनिक मानव की भी प्राथम्य प्रदान करती रही है। भावुक एवं विज्ञ जनों की विर सहचरी यह प्रकृति युग युगान्तर से मानव जीवन में एक सार होती रही है।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। मानव हृदय की उदार वृत्तियों का 'सत्य शिवम् सुन्दर' की भावमयी पृष्ठभूमि पर समष्टि रूप में प्रस्तुतीकरण ही साहित्य है। हमारे आदि साहित्य अर्थात् वैदिक साहित्य का सर्जन भी प्रकृति की रम्य सुषुमा की परिधि में हुआ है।

जहाँ तक काव्य का प्रश्न है, साहित्य के व्यष्टि रूप के कारण प्रारम्भ से ही प्रकृति काव्य की अन्तरात्मा में भावती रही है वेदों का सर्जन ही वन्य प्रदेशों में हुआ है? भगवान् वेदव्यास, वारमीकि आदि महर्षि तपोवनो को अलकृत करते रहे हैं। यही कारण है कि लक्षण ग्रन्थों में लक्ष्य ग्रन्थों के लिए प्रकृति-वर्णन (विशेष रूप से महाकाव्यों के लिए) का निर्देश किया गया है।

काव्य का सर्वोत्कृष्ट रूप नाटक या नाट्य है। रूपको के दृश्य एवं श्रव्य होने से जहाँ उनकी उपयोगिता काव्य में द्विगुणित हो जाती है, वहाँ नाटकीय-दृश्यों के प्रकृति के नाना मनोरम उपादान अपने विविध परिधानों से परिबेष्टित हो नाटक की चारुता में चार चाद लगा देते हैं। भारतीय नाटकों के दृश्यों में प्रकृति प्रारम्भ से ही सजीव रही है। नाटक ही नहीं अपितु अश्वय बाङ्मय (कविता, गद्य, प्रोस्यामिका, नीतिक्राव्य) में प्रकृति की छाया परिलक्षित हुई है। इस भाँति वन-श्री हमारे साहित्य में नीर-सीर की भाँति एक होती दिखाई देती है।

सांख्य दर्शन के अनुसार प्रकृति एक स्वतन्त्र तथा अविनाशी सत्ता है। इसके 'सर्व रजस् तमस्' तीन गुण होते हैं। यूनानी दार्शनिक प्रकृति को परमात्मा का अनुकरण बतलाते हैं। वे प्रकृति में ईश्वरीय सत्ता का आरोप कर लेते हैं। इसी आध्यात्मिक सत्ता का अनुकृति मात्र

प्रकृति की अनुकृति काव्य है । इसीलिए वे काव्य के रस को 'ब्रह्मानन्द-सहोदर' नहीं मानते । उनका कथन है कि अनुकृति की अनुकृति प्रकृतिम हो ही नहीं सकती । जा भी हो इयना मत्त है कि प्रकृति की इसी प्राकृतिकता की आधार शिला पर ही भारतीय वृत्त पूजा के विश्वास एवं परम्परा की प्राचीनों पर धार्मिकता का भव्य भवन सड़ा है ।

कालिदास के नाटको में हमें प्रकृति की रम्य रूप-राशि देवने को मिलती है । 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का सम्पूर्ण कथानक प्राकृतिक वैभव से आवद्ध है । तपोवन का रम्य एवं सजीव वर्णन किसको विमुग्ध नह करता । वन-लताओं एवं तट-पादों का अभिनिर्ज्वलन तो सजीव सुन्दर है । प्रथम दृश्य में मृगया-हेतु आगत दुष्यन्त का मृगानुसरण अति सुन्दर है । पूरे नाटक की गतिविधियाँ प्रकृति की तपोभूमि में ही घटित होती हैं । कालिदास के नाटक ही नहीं महाकाव्य भी प्रकृति सौंदर्य से ओत प्रीत है । कुमारसंभव में हिमालय का वर्णन अत्यन्त मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी है । भास अश्वघोष आदि का साहित्य भी प्रकृति की नैसर्गिक सुषुमा से युक्त है ।

किन्तु संस्कृत साहित्य में जिस महाकवि के ग्रन्थ विविध और सांगोपाङ्ग प्रकृति चित्रण से सहनीय हैं जो इस क्षेत्र का सम्राट है वह है वाग् विभूति भवभूति । शास्त्रीय ढंग पर प्रकृति के दो रूप दृष्टिगत होते हैं—प्रासम्भन तथा उद्दीपन । लक्षणा ग्रन्थों में प्रकृति का उद्दीपन रूप ही ध्वननाया गया है । यही नहीं प्रकृति कोमल और कठोर रूपों में भी विभक्ति हो गई है प्रकृति का मानवीकरण भी प्रकृति वर्णन का विशिष्ट स्वरूप रहा है ।

बाह्य प्रकृति का चित्रण

महाकवि भवभूति ने अपने विख्यात नाटक 'उत्तरागमचरित्र' में प्रकृति का सजीव एवं विशद वर्णन किया है । महाकवि का यद्यपि प्रमुख लक्ष्य 'एकी रसः करुण एव' का प्रतिपादन करना ही था किन्तु कथावस्तु एवं घटनाक्रम के प्राकृतिक अवन में घटित होने से तथा वनन प्राधान्य होने से प्रकृति गौण होकर पर्याप्त रूप में उच्चतर हो गई है । करुणा-

पारामार की चचन लहरियो को प्राकृतिक दृश्यो का समीर सुरभित
 बिय रहना है । भवभूति ने यदि प्राकृतिक शोभा को इतना न सजोया
 होता तो निश्चित ही कल्याण-भावो को सहन करना सहृदयो के लिए
 दुष्कर होता ।

चित्र-दर्शन के प्रथमादृष्ट सं ही करुण और प्रकृति एकसार होती
 दिखाई देती है । । कालिदास की भांति ही भवभूति की दृष्टि सर्वप्रथम
 तपोवन पर ही पड़ी है—

“एतानि तानि गिरि निर्मलरणीतटेपु
 वैग्यानसाभित तरुणि तपोवनानि ।”

अतीत की बिरह-व्यापिनी घटना को नटु स्मृति पक्षवटी के
 सूर्य-लला प्रसङ्ग से प्रदीप्त हो उठती है और सीता वेदना पूर्ण आतंस्वर
 में ज्वलन कर उठती है

“हा । आर्यपुत्र ।। एतावन्ते दर्शनम् ।”

कल्याण की यह प्रतनु मन्दाकिनी कुछ ही आगे प्रकृति को
 अन्तस्थ कर लहरें मारने लगती है । प्रकृति की स्वतन्त्र सत्ता भी वेदना
 के अस्तगत सूर्य की रश्मिमा से भारस्त हो उठती है । बाल्मीकि की
 “वैदूर्यविमलोपाद्रका” पद्मा आसुप्तो से आर्द्र-दृष्टि पथ में धारही है —

“एतस्मिन्मद कलमल्लिकाक्षपद्म-

व्याधूतस्फुरदुर दण्डपुण्डरीकाः

शाष्पाम्भः परिपतनीद्गमान्तराले

सदृष्टाः कुवलयिनो मया विभागा ॥”

मात्स्यवान पर्वत, के उत्तुंग शिखर पर आश्लिष्ट मेघ को
 दिखाकर महाकवि ने व्यजना का परिचय दिया है—

“सोऽयं शैलः कुसुमसुरभिमल्यवान्नाम यस्मिन् ।

नीलः स्निग्धः श्रयति शिरारं नूतनस्तोयवाहः ॥”

प्राकृतिक सुषमा से परिपूर्ण चित्रदर्शन भी कहना से भाद्र हो
 उठता है कि राम को भी 'विरम विरमातः परम धर्मोऽस्मि' कहना
 पड़ता है। महाकवि का प्रधान लक्ष्य करण राम को प्रधान के रूप में
 सप्त करते रहे हैं। यही कारण है कि प्रकृति भी कहलामय हो उठी है।

भवभूति ने वास्तवप्रकृति के विविध भगों का चित्रण किया है।
 प्रकृति के अमुन्दर चित्रों का भी समावेश हो गया है। देखिये—

कण्डूल द्विपगण्डपिण्ड कपणोत्कम्पेन संपातिमि
 धर्मससितबन्धनेच कुसुमं रचन्ति गोदावरीम्।
 छायापस्किरमाणचिप्किरमुख व्याकुष्ट कोटश्च
 पूजत्कलान्त कपोत कुक्कुट कृताः कूले कुलायद्रुमाः ॥'

प्रकृति के कठोर चित्र भी यत्र तत्र मिल जाते हैं —

निष्कूजस्ति मिताः क्वचित्क्वचिदपि प्रोच्येण्ड सत्त्वस्वनाः
 स्वेच्छासुप्तगभीरि भोग भुजगशवास प्रदीप्ताग्नय
 सोमान पुदरोदरेष विरलस्वरूपाम्भसो यास्वयं
 तृप्यद्भिः प्रति सूर्यकैरजगर स्वेदद्रवः पीयते ॥"

प्रकृति के शास्त्रीय स्वरूप आत्मन्वन और उद्दीपन भी
 उत्तर रामचरित में समाविष्ट हैं। आत्मन्वन रूप प्रकृति का एक चित्र
 दृष्टव्य है—

एते स एव गिरयो विरुचन्मयूरा,
 स्तान्येव मत्तहरिणानि वनस्थलानि।
 आमञ्जुवज्जलनानि च तान्यमूनि,
 नीरन्ध्रनीपनिचुलानि सरित्तटानि ॥'

सीता-निर्वासन के कारण राम को पंचवटी देखकर आत्मग्लानि
 और पश्चात्ताप हो रहा जिसकी एक मात्र उद्दीपिका पंचवटी थी ही है—

'यस्यां ते दिवसास्तया सह यथा नीता यथा स्वेष्टे।

यत्सर्वबंधकथा मिरैव सततं दीर्घा मिरास्थोयत ।
 एकः सम्प्रति नाशित प्रियतमस्तामेव राम.कथं,
 पापः पंचवटी बिलोकयतु चा गच्छत्व सम्मान्य वा ॥'

पंचवटी के दृश्य में मुकुन्दार और-कठोर दोनों ही स्वरूप आये हैं ।
 पठोर रूप देखिये—

'गुञ्जत्कुब्ज कटोर फोशिक घटा घुत्कारवत्कीचकः
 स्तम्भाडम्बर भूकमौकुलिकुल मौश्रामिघोऽयं गिरिः ।
 एतस्मिन्प्रचलाकिनां प्रचलतामुद्वेजिताः कूजितै,
 कट्वेलन्ति पुराण रोहिण तरुस्कन्धेषु कुम्भीनसाः ॥'

प्रकृति का मुकुन्दार स्वरूप भी कम आकर्षक नहीं है ।

एते स कुहरेषु गदगदनदग्गोदावरी धारयो,
 मेवालम्बित मौलिनाल शिखराक्षोणी भूतो दाक्षिणाः ।
 अन्योन्य प्रतिघात समूल चलत्कल्लोल कोलाहलैः
 रुतालास्त इम गंभीरपयसः पुण्याः सरित्सङ्गमाः ॥'

अप्रस्तुत विधान में भी प्रकृति की सत्ता का समावेश हो गया है ।

देखिये —

'किमलयमियमुग्रं अन्धनादिपलूनं
 हृदयकमल शोषी दारुणो दीर्घशोकः
 ग्लपयति परिपाण्डु क्षाममस्याः शरीरं
 शरदिज इव धर्म. फेतकी गर्भपद्मम् ॥

अन्तः प्रकृति काचित्रण-महाकवि भवभूति ने मानवहृदय की विविध
 दशाओं एवं मनोभावों का भी व्यपत्त अनुपम चित्र खींचा है ।
 जानकी हरण से उत्पन्न प्रीति रावण ने विनष्ट हो जाने पर भी राम के
 हृदय में वृश्चिक-दशन सी वेदना उत्पन्न करता रहा है । प्रतीक की
 प्रयमान जनक घटनाएँ, जिनसे इष्ट जनों को कष्ट होता है मृत्युपर्यन्त
 हृदय में शत्रु की चुभनी रहती हैं । देखिये राम के हृदय की स्थिति मानव हृदय

के घरातल पर कितनी घासबिक है—

‘तत्कालं प्रियजन विप्रयोग जन्मा,

तीक्ष्णोऽपि प्रतिकृतिराब्धया विसोदः ।

दुःसाग्निर्मनसि पुनर्विपच्यमानो

हन्मर्मघ्ण इव वेङ्गां तनोति ॥’

राम को कष्टज्ञ बलीत सुनने मात्र से ही भगवती जानकी का विषेय प्रत्यागत सा छात होता है। दुःखद बात सुनने की इच्छामात्र भी मानव-हृदय में नहीं रह जाती—

“धिरम धिरमानः परं न क्षमोऽस्मि

प्रत्यावृत्तः स पुनरिव मे जानकी विप्रयोगः ।”

प्रिया के प्रमिलापित अङ्गस्पर्श से मानव हृदय की दशा क्या हो जाती है यह बिज्जन घण्टा भुक्तभोगी ही अनुमान कर सकते हैं। राम के चित्त की स्थिति की व्यजना कितने सुन्दर ढंग से की गई है देखिए—

“विनिश्चेतु शक्यो न मुरभिति वा दुःखमिति वा
प्रमोहो निद्रा वा किमु विष विसर्प किम् मरः
तव स्पर्शे स्पर्शं मम हि परिमूढेन्द्रियगणो
विकाररचैतन्यं भ्रमयति च सम्मोहयति च ॥”

सदेह के माध्यम से जानन्द की अनुभूति क्या अनुभूति भी कवि नहीं होने देता। लोकापवाद के कारण धीरोदन्त राम ब्रजानुरञ्जन के निमित्त सीता का परिचय कर रहे हैं किन्तु उनके हृदय में भीषण दुःख भरा है। एक धीरे पति परायणा, अनिन्द्य सुन्दरी जानकी की स्नेह-भक्ति, तो दूसरी धीरे राजा का घर्म ...। दोनों का निर्बह आवश्यक है किन्तु राम राजा हैं और राजा के घर्म की विजय होती है। किन्तु हृदय भगान्ति एव आत्मग्लानि की बिभ्रौषिका है—

शैशवात्प्रभृति पोषिता प्रियां सौहृदाद् पृथका अयामिमाम् ।

छद्मना परिददामि मृत्यवे सौनिके गृहशकुन्तिकामिव ॥

यही नहीं राम का अतन्द्रित इतना भीषण हो जाता है कि राम स्वयं को पिक्कार उठते हैं।

अपूर्यं कर्मचाण्डाल मयि मुग्धे । विमुज्य माम् ।

भितासि चन्दनभ्रन्त्या दुर्गिपाक विपद्रुमम् ॥”

अरीन की सुखद स्मृतियाँ, दण्डकारण्य दर्शन से पुनः उदीप्त हो उठनी हैं। सीता व परित्याग की वेदना और ग्लानि राम के हृदय को शन-शत खण्डों में विभक्त सी कर रही है।

“हा । हा । देवि स्फुटति हृदयं, ध्वंसते देहवन्धः ।

शून्यं मन्थे जगदधिरल उज्ज्वलमन्तर्जलामि ॥”

यद्यपि भवभूति के नाटक का प्रधान उद्देश्य ‘एकौ रस कदा एव’ को ही सिद्ध करना है किन्तु पात्र कथानक और स्थानक के समीप से प्रकृति का अधिकार अधिक समावेश हुआ है। चित्रदर्शन, पञ्चवटी और दण्डकारण्य व चित्र अनुपम है। उनमें प्रकृति के सभी स्वरूप (सुकुमार और कठोर, मालम्बन और उद्दीपन, अन्त और बाह्य) मिलते हैं। जब कि कालिदास ने प्रकृति व सुकुमार पक्ष को अपनाया है वहाँ भवभूति ने कठोर व सुकुमार दोनों ही रूप अपनाये हैं उदाहरणार्थ मालती माधव नामक प्रकरण रूपक में रघुमन्त्र पर व्याघ्र एव स्मृति के दृश्य दिखाये हैं जो नाट्य परम्परा के भी विरुद्ध हैं। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि उनकी प्रकृति समकाली है। उनके सुकुमार प्रकृति चित्र में यत् चिन्ताकर्षक एव प्रभावोत्पादक है।

कदा रस परिपूर्ण उत्तरगाम्भारित म प्रकृति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अन्ति करुण स्थिति से प्रकृति के ही कारण कोई अपने हृदय को संभाल सकता है अन्यथा करुणा का आवेग न जाने हृदय को क्या करता ?

भवभूति का प्रणय चित्रण

भवभूति की रचनाओं में प्रेम का जितना आदर्श और मर्यादापूर्ण चित्रण प्राप्त होता है उतना किसी अन्य कवि की रचनाओं में नहीं।

उन्होंने अपने नाटकों में विशुद्ध प्रेम का ही चित्रण दिया है। उनका प्रेम वास्तविक नहीं। यौवन की रोमाञ्चकारी अवस्थाओं के वर्णन में भी किसी प्रकार की कामलिप्सा का सङ्केत नहीं प्राप्त होता। सर्वत्र उदात्त, गाम्भीर्य स्थिरता दिखाई देती है। भवभूति बादरों दाम्पत्य प्रेम के सफुन चित्रकार हैं। भवभूति के पहले के कवि स्वच्छन्द प्रणय के चित्रण में विशेष दत्तचित्त रहे हैं। किन्तु भवभूति के प्रेम सम्बन्धी विचारों को पढ़ने से ज्ञात होता है कि उन्होंने एक बहुत ही आदर्श श्री सरल प्रेमी हृदय पयाया था। प्रेम कैसे हाता है इस विषय में भवभूति का विचार है कि प्रेम किया नहीं जाता वह तो हो ही जाता है और साथ ही प्रेम सुन्दरता, आकर्षण, धन आदि बाह्य कारणों पर नहीं आधारित होता, वह तो हृदय में होता है एवं हृदय ही प्रेम के रहस्य को जानता है।

‘हृदयं त्वेष जानाति प्रीति योगं परम्परम्’ ।

‘व्यतिपत्ति पदार्थानान्तर कोऽपिद्वेतु ॥

न स्तु बहिरुपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते ।

यिकसति हि पतंग स्योदये पु ढरीफम् ॥

द्रवति च हिमरश्मा बुद्गते चन्द्रकान्तः ॥

प्रेम ही और वह किसी कारण पर आधारित हो, यह दोनों बातें परस्पर विरुद्ध हैं। प्रेम तो अकारण स्वतः प्रेरित और अनिवार्य होता है वास्तविक प्रेम भवभूति के अनुसार निस्वार्थ होता है। इस उदात्त प्रेम भाव की व्याख्या करते हुए भवभूति कहते हैं प्रेम में कोई किसी से कुछ माँगता नहीं। किसी के लिए कुछ भी न करने पर प्रेम पात्र प्रेमी के लिए एक वस्तु निधि होता है। प्रिय के साक्षिण्य मान से ही प्रेमी का सारा दुःख दूर हो जाता है।

अकिञ्चदपि कुर्वणः सौरयैर्दुःखमन्यपोहति ।

‘तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः ॥’ (६१५)

उत्तररामचरित के प्रथम अंक में ही कवि ने आदर्श दाम्पत्य

प्रणय सरसता चित्रित की है। दाम्पत्य प्रणय को कवि ने उज्ज्वल भव्य और बड़े प्रणयों से प्राप्त सीमाभ्य माना है। वह सीमाभ्य, जिसमें प्रेम मुख दुःख में सदा एक रस बना रहता है, जो सब स्थितियों में उसी प्रवाह में अनुगत रहता है, और हृदय को अपूर्व शान्ति देने वाला है। सच्चा प्रेम भवस्या परिवर्तित के साथ भी परिवर्तित नहीं होना, वह वृद्धावस्था में भी समाप्त नहीं हो पाता। यह प्रेम समय के व्यतीत होने से सबोच के हट जाने से और अधिक प्रौढ़ रूप को प्राप्त कर लेता है।

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगुणं सर्वास्वस्थासु यद् ।
 विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्न हायौ रसः ।
 पालेनावरणात्ययात् परिणते यत्स्नेहसारे स्थित
 भद्र प्रेम सुमानुषस्य कथमप्येक हि तत्प्राप्यते ॥ (१४०)

भवभूति के अनुसार प्रेम की ज्योति सुख के समीप में तथा दुःख के दूरीकरण में समान रूप से जला करती है। भवभूति ने जिस दाम्पत्य प्रणय का चित्रण किया है वह दुःख के समान बल और गंजाजल के समान पवित्र है।

स्तपयति हृदयेशं स्नेहनिष्यन्दिनी ते २६९४५
 धनलं बहुलमुग्धा दुग्धकुल्येव हृदि ।

भवभूति के अनुसार दाम्पत्य प्रणय की परिणति सम्मान प्राप्ति में है। पति पत्नी का प्रेम तभी पूर्ण सफल होता है जब दोनों के सम्बन्ध को हट बनाने के लिए आनन्दमयी ग्रन्थि संस्तान हो।

✓ अन्त करणं तत्त्वस्य दम्पत्यो स्नेहसंश्रयात् ।

आनन्दग्रन्थिरे कोऽयमपत्य इति ज्ञेयं कथ्यते ॥ (३१७)

‘उत्तर’ में विदूषक के अवतरित न होने का एक मुख्य कारण भवभूति का सपना प्रेम सम्बन्धी उज्ज्व आदर्श भी है। उनका प्रेम किसी विलासी सम्राट की प्रेम क्रीड़ा नहीं है जिसमें विदूषक की

सहायता अपेक्षित हो । भवभूति की प्रणय कल्पना, प्रणय साधना व्ययन्त उदात्त एवं पावन है । जिसकी समता विश्व के घोर भारत के साहित्य में प्राप्ति होना दुर्लभ है ।

“करुण रस” ✓

✓ “जयन्तु ते सुकुतिनः रस सिद्धाः पृथीश्वरा ।

नास्मि येषां यथा काये जरा मरणजम् भयम् ॥”

महाकवि भवभूति आत्मीय की भाँति एक घोर जोश्वी के विरह मान से द्रवीभूत हैं तो दूसरी घोर व्याध को जापाभिभूत करने के लिए उनकी वाणी में ओज भी भरा है । यही कारण है कि उनके द्वारा कर्ण घोर घोर दोनों रसों का चित्रण अपनी चरम सीमा में उत्तर रामचरित में पाया जाता है । भवभूति की प्रसिद्धि इसलिए है कि “कादम्ब भवभूतिरेव सन्नुते” अर्थात् भवभूति सबसे अधिक कर्ण रस के उन्मेष में सिद्ध हस्त हैं । भवभूति के कर्ण रस वर्णन में अलौकिकता है, चमत्कार है । भवभूति के कर्ण रस की प्रशंसा करते हुए गोदध-नाचार्य ने अपनी ‘दार्पा सप्त शती’ में कहा है ।

“भरभूतेः सम्बन्धाद् भूरेव भारती भाति ।

एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति प्राक् ॥”

भवभूति कर्ण रस के प्रधान आचार्य है । रस शास्त्रियों में प्रधान रस के विषय में भोजराज भुंज्जार को रसरज स्वीकार करते हैं तो अभिनवगुप्त शास्त्ररस को मुख्य मानते हैं किन्तु भवभूति ने कर्ण रस को ही सब रसों में प्रधान रस स्वीकार किया है । उन्होंने कर्ण रस के सख्त समर्थन में सभी रसों को कर्ण रस को ही विशेष स्थिति या मिश्र-मिश्र परिणाम स्वीकार किया है ।

“एको रसः करुण एवं निमित्तमेदाद्

भिन्नः पृथक् पृथग्विश्रते विवर्तान्

आवत्त ध्रुवदुद तरंगमयान् विकारान् ।

अम्भो यथा सलिलमेव हि तत् समग्रम् ॥” (३।४७)

‘करुण इस ही एक मात्र मुख्य रस है जिस प्रकार एक ही जल कभी भँवर के रूप को, कभी बुदबुद के रूप को कभी तरंगों के रूप को धारण कर लेता है किन्तु वास्तव में है सब जल ही उसी प्रकार निमित्त भेद से अर्थात् रस सामग्री के वैलक्षण्य मात्र से एक ही करुण रस और रसों के रूप को धारण कर लेता है।’ इस प्रकार करुण ही सब रसों की प्रकृति है। अन्य रस तो उसकी विकृति है। जब करुण रस के विषय में भवभूति ऐसा उच्च दृष्टि कोण रखते थे, तब क्यों न उनके करुण रस बरगुन अत्यन्त उत्कृष्ट ही।

उपपुक्त श्लोक अशेष उत्तररामचरित नाटक का बीज मन्त्र सा है। उत्तररामचरित के अशेष अंक किसी न किसी रूप में करुण रस से जात प्रोन हैं। नाटक के प्रारम्भ में ही हम देखते हैं कि दुर्मुख के विदा होते ही राम क दुख का बाध टूट जाता है।

“शैशवात्प्रभृति पोषितां प्रियैः सौहृदाद् वृथगा अयामिमाम्।
इक्ष्वाणा परिददामि मृत्यवे, सौनिको गृहशंकृतिकामिव ॥” १।४५

प्रथम अंक के चित्र दर्शन वाले दृश्य में हम दम्पति के अत्यन्त अनुराग का दर्शन करते हैं जो भविष्य में विरह व्यथा को और भी अतृप्त बना देता है। जब पति पत्नी एक सम्बन्ध दुख काश के बाद प्रणय के निर्भय भाव में तल्लीन होकर आनन्द अनुभाव के अवसर को प्राप्त करते हैं तभी आनन्द मधु का स्वादा जो ओठों तक अगम्य था, निष्ठुर नियति से छीन लिया जाता है। दूसरे अंक में राम जब एकाकी चिर परिचित दण्डकारण्य और पचवटी में प्रवेश करते हैं तो इन्हीं क्षणों में सीता के साथ अनुभूत अपने अतीत सुखों को स्मरण कर उनकी व्यथा उमड़ पड़ती है।

“चिराद्देगारम्भी प्रसृत इव तीव्रो विपरसः

कुतश्चित्संवेगात्प्रचल इव शल्यस्य शकलः ।

प्राणो रुद्धग्रन्थि स्फुटित इव हृन्मर्मणि पुनः

घनीभूतः शोको विकलयति मां मूर्च्छयति च ॥” २।१६

तृतीय श्लोक तो कण्ठ रस का मानो मगध सागर ही है । कण्ठ रस की जैसी तीव्र, गम्भीर एवं मर्मस्पर्शनी व्यञ्जना इसमें हुई है वैसी शायद ही कहीं और हुई हो ।

भवभूति का कहना रस अत्यन्त गम्भीर तथा मर्मस्पर्शी है । उनके अनुसार वह उस पुट पाक के समान है तो ऊपर से तो पक्का निप्त होने से नितांत शान्त, परन्तु भीतर तीव्र अतर्प्येदना स तप्त होता रहता है ।

‘अनिर्भिन्नो गभीर त्वादन्तर्गृह्यधन म्यय ।’

पुटपाक प्रतीकाशो रसस्य करणो रस ॥” (३।१)

भवभूति के अनुसार शोकातिरेक की दशा में एकान्त में जो भर कर रो लेने से हृदय हल्का हो जाता है ।

‘पूरोत्पीडे तडागस्य परीवाह प्रतिक्रिया ।’ (३।२६)

राम की कितनी कष्टचामयी सृष्टियाँ अत्यन्त हृदय स्पर्शी हैं । यही ‘कुकूल’ का सकेत कवि के ‘गाढ़ अनुभव की ओर है । कुकूल की छाँच बहुत तेज होती है परन्तु वह एक साथ म जल कर धीरे धीरे जलती है जिससे हृदय में घसीम हुआ वह वेदना की तीव्र अभिव्यञ्जना जाता होती है ।

‘चिरं ध्यात्वा ध्यात्वा निर्माय पुरतः

प्रवासेऽप्याश्वास न खालु न करोति प्रियजन ।

जगज्जीर्णारण्य भवति च विकलत्रयुपरमे

कुक्कुलानां शशौ तदनु हृदय पच्यत इव ॥” (६।३८)

राम तो अपने दुःख को शब्दों के द्वारा प्रकट करते हैं किन्तु सीता तो मूर्तिमान् कहण रस ही है तमसा, सीता का बखान करते हुये कहती है—
श्लोक है परिषाण्ड दुवस कपोल सु दरम दधती विलोल कवरीकमाननम् ।
कण्ठस्य मूर्तिरपवा शरीरिणी, विरह ध्ययव वेनमति जानकी ॥

जानकी के साथ साथ इस श्लोक में भवभूति की वाणी भी वास्तव में ‘कण्ठस्य मूर्तिरपवा शरीरिणी’ ही हो उठी है । राम, सीता के लिए विलाप कर रहे हैं, ? मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उनका यह विलाप अत्यन्त मर्मस्पर्शी है ।

हा हा देवि ! स्तुन्ति हृदयं स्तसते देहवध
 शून्य मन्ये जगत्विमल ज्वालमतर्ज्वलाम् ।
 सान्न्न्ये तमसि विधुरो मज्जन्तीवान्तरात्मा
 विष्वङ्मोह स्थगयति कथमन्दभाग्य करोमि ॥

प्रायः काव्यिक पृष्ठभूमि पर ही वास्तविक प्रभविष्णु काव्य की
 सर्जना हुनी है । श्रृंगार भाषा के प्रसिद्ध कवि खेमी ने लिखा है ।

जवर स्वीटेस्ट सास आर दोर्ज बिच टेल मवर सैटस्ट पाटस ।
 हिलो के प्रसिद्ध कवि पत का भी कहना है ।

त्रियोगी होगा पहला कवि, आह से उपज होंगा गान ।

उमड कर आँखों से चुपचाप, वही होगी कविता अनजान ॥

भवभूति ने उत्तररामचरित में जो कथन रस की म दाकिनी
 प्रवाहिन की है वह वास्तव में सम्पूर्ण साहित्य की एक समुत्पत्तपूर्व एवं
 समुल्लेख निधि है । इस म दाकिनी की अविरल धारा में सीता का
 परिणाम—जय मालिनी सदा के लिए घुल जाता है और दो हृदयों
 का सच्चा अनुसंधान हो जाता है । भवभूति के कारण रस का ही यह
 प्रभाव है कि जब भी चेतन और चेतन भी जुड़ जाते हैं ।

सहातामपि चैतन्य भवभूतेरभूद् गिरा ।

मावाप्यरोदीत् पावत्या हसत स्मेरस्मनापि ॥

भवभूति की काव्य-प्रतिज्ञा

भवभूति मूलतः कवि हैं । भवभूति की कविता बड़ी चमत्कारिणी
 है । सञ्ज्ञित भाषा के ऊपर आपका अगाध अधिकार है । वाक्यों तथा
 की तरह आपकी वक्ष्या थी । भवभूति की कविता में सञ्ज्ञित भाषा
 भावानुसारिणी है । दानों का अनुपम सामर्थ्य है । भविष्य की
 दृष्टि है भवभूति कोमल तथा गम्भीर दोनों प्रकार के भाषा के सुकल
 कलाकार हैं । संयोग वियोग करण, और आदि भी रसों का चित्रण
 चन्दाने कुशलता से किया है । भवभूति की अतिशय आवृत्त भाव को

इतना प्रकट कर देती है कि उनका चित्रण कानिदास की तरह व्यंग्य नहीं रही पाता है। यही कारण है कि कानिदास के बाद भवभूति भाव पक्ष की दृष्टि से घाते है।

शब्द विन्यास के साथ साथ चित्र उपस्थित कर देना कवि की विशेषता है। गद् गद् नाद के साथ बहने वाली नदियों का धीरे रोरमय शब्द चित्र स्वरूप सामने खिच आता है।

एते ते क्षुद्रेषु गद् गद् नदद् गोदावरोवारयो

मेघालम्बितमौलिनीलीशिरधराः सोष्णोभूतो दक्षिणाः ।

अन्योन्य प्रतिधात संकुल चलत्कल्लोल कोलाहलै

रुत्तालास्त इमे गभीरपयसः पुण्या. सरित्थंगमाः ॥ (२।३०)

राम्यस्य प्रणय के संयोग तथा वियोग दोनों अवस्था वाले चित्रण उत्तररामचरित में अनुपम हैं तथा तत्सम्बन्धी सूक्तियाँ संस्कृत साहित्य की अमूल्य संपदा हैं। उत्तररामचरित के प्रथम अंक में संयोग धृञ्जार का सरस वातावरण है, जहाँ राम सीता को अतीत काल में अनुभूत प्रणय व्यापारों की याद दिलाते हैं।

किमपि किमपि मन्द मन्दभासक्तियोगाद्,

विरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण ।

अशिथिलपरिरम्भक्यापृतै कैकदोष्णो,

रविदित गवयामा रात्रिरेव व्यरंसीत् ॥

सीता को बनवास देने के उपरान्त प्रियतमा सीता के वियोग में राम की दशा अत्यधिक शोचनीय हो जाती है। उनका हृदय विदीर्ण होगा चाहता है पर उसके लण्ड नहीं हो पाते। व्याकुल शरीर मूर्च्छित हो रहा है, पर समाश्रय नहीं होता। प्रिय वियोग्याग्नि शरीर को जलाती है पर भस्म नहीं करती। क्रूर विषादा सर्ग पर प्रहार करता है किन्तु जीवन का अन्त नहीं हो जाता।

दलति हृदयं शोकोद्वेगाद् द्विधा न तु भिद्यते

बहति विकल कायो मोहं न मुञ्चति चेतनाम् ।

उपलयति तन्मन्तर्दाहः करोति न मस्मसात्

प्रहरति विधिममच्छेदी न कृन्तति जीवितम् ॥ ३१३१

युद्धाार तथा कष्ट मे भवभूति को सरस्वती की तदनुकुल कोमल
बान्त पदावली की सज्जा में दिखाई देती है तो बीर और रीढ़ इस में
गोडो की दिक्कत बन्धता दिखाई पड़ी हैं। उत्तररामचरित की चन्द्रवेतु
भीर सब की उक्तियों तथा उनके युद्ध वर्णन ॥ बीर रसोचित पदावली
का प्रयोग पाया जाता है।

ग्राजिहया बलयितोत्कट कोटिदण्ड

मुद्गारि घोरघन घर्घर घोषमेतत् ।

प्रासप्रसक्त हसदंतकवकत्रयन्त्र

जृम्भाविडम्भि विकटोदरमस्तु चापम् ॥ (४१२६)

। भाषों के स्निग्ध चित्रण के कारण कुछ लोग उत्तररामचरित को
'गीति नाटक' और प्रकृति तथा युद्ध के वर्णनों के विन्यास के कारण
कुछ लोग इसे 'एपिक ड्रामा' भी कहते हैं। यथार्थ में तो उत्तर-राम
चरित भवभूति की नाट्य प्रतिभा को प्रकट करने वाला सर्वोच्च नाटक
है। भवभूति स्वभाव से ही गंभीर प्रकृति के कवि हैं, जिन्हें अपनी
वेदना अधिक दृष्टि गोचर होती है। फलतः वे भाव प्रवण कवि हैं।
इस भावुकता का प्रभाव उत्तर रामचरित में अत्यधिक पड़ा है।

—भवभूति और कालिदास—

नाट्य साहित्य के क्षेत्र में, भवभूति की समीक्षा करते समय
कालिदास के साथ यदि किसी कवि का नाम लिया जाता है, तो वह है
महाकवि। भवभूति यद्यपि प्राचीन काल में भी और वर्तमान काल में भी
कालिदास की सर्वश्रेष्ठ स्वीकार किया जाता है, फिर भी कुछ समालो-
चकों की दृष्टि में उत्तर रामचरित में भवभूतिविशिष्ट है। 'कालिदास
और भवभूति दोनों में कौन थोड़ा है, इस विषय में प्राचीन काल में एक
विवाद उठ खड़ा हुआ था, जिसकी विजय इस पक्ष से होती है।

कश्य कालिदासाद्या भवभूतिर्महाकवि ।

तरव पारिनातया स्नुहीवृक्षो महातरु ॥

कालिदास और भवभूति की तुलना करते समय हम साहित्य के कुछ प्रमुख ग्रंथों को यहाँ पर प्रस्तुत करेंगे ।

१ रस मिद्धि—महाकवि भवभूति की वाच्य कला का वैशिष्ट्य है उनकी करुण रस की अभिव्यञ्जना । जिसके लिए भवभूति और उत्तर-रामचरित विश्वनीय विख्यात हैं ।

‘करुणे नू क्यो रोतो है ? उत्तर में वह और अधिक रोई ।

मेरी विभूति की भवभूति क्यों कहे कोई ॥”

कालिदास ने भी रति विलाप और धज विलाप में करुण रस को प्रस्तुत किया है किन्तु भवभूति की बलीलिकता और वृत्तकार की वह नहीं पा सके हैं । भवभूति का वीर रस का वर्णन भी अत्यन्त सजीव है वीरों का गर्वीना गजन और जस्त्रों की झुनकार, युद्ध का प्रत्यक्ष दृश्य उपस्थित कर देते हैं—

किन्तु, कालिदास शृङ्गार रस के सयोग और वियोग दोनों क्षेत्रों में भवभूति को बहुत पीछे छोड़ देते हैं । दोनों कवियों की रस परिपाक की दृष्टि से तुलना करते हुए एक समालोचक वा कहता है—

‘इह कालिदास हैज मोर फे ती एण्ड इमिजिनेशन भवभूति इज मोर सटिमेण्टल एण्ड पेंसनेट । कालिदास स्पेशली एक्सेल्स इन ‘शृ गार भवभूति इन करुण ‘एण्ड वीर’ बट थोप डिपिक्ट दि थदर ‘सेटीमेण्टस प्रविटकली विद दि सेम फसिलिटी एण्ड फेलिसीटी ।”

२ शैली—कालिदास की कविता में व्यञ्जना की प्रधानता है तो भवभूति की वाणी में वाक्याथ की प्रगल्भता । कालिदास पौड से जुने शब्दों में अधिक से अधिक अर्थ की अभिव्यक्ति कर देते हैं तो भवभूति विपुल वाग्बिस्तार द्वारा किसी भाव का विशद वर्णन करते हैं । भवभूति सब कुछ स्वयं कह देते हैं जबकि कालिदास बहुत कुछ अपने पाठक की कल्पना के लिए छोड़ देते हैं । कालिदास की रचना प्रणामी

सरल और आर्द्धश्लेष शून्य है किन्तु भवभूति की वचनशायी श्रोत्र और दोष समास संकुल है। कालिदास की भाषा मसृण और कीमते हैं, भवभूति की प्रगल्भ और उदात्त। कालिदास मूर्त की उपमा मूर्त से देने हैं तो भवभूति प्रायः मूर्त की उपमा बमूर्त से देते हैं। जैसे—शकुन्तला की उपमा सिवार से लिपटे कमल पुष्प से दी गई है तो सीता की भवभूति के द्व. मूर्तिमयी करुणा या विरह-व्यथा से।

कालिदास ने प्रकृति के केवल ललित और सुकुमार पक्षों का ही वर्णन किया है किन्तु भवभूति ने प्रकृति के विकट, उग्र और भयातक पक्षों का भी वर्णन सुन्दर ललित और सुकुमार पक्षों के ही समान किया है। डा० मण्डारकर दोनों कवियों को शैलीगत तुलना करते हुए कहते हैं।

“कालिदास, ऐज प्रो० विलसन रिमाक्स हैज और फैंसी। ही इज ए ग्रेटर आर्टिस्ट दैन भवभूति। दि फार्मर सजेस्ट्स थार इन्डिकेट्स, थ्यार दि लेटर एक्सेप्रहेज इन फोसिफुन लैंग्वेज। दि करेक्टर्स आफ दि लेटर, ओवर कम थार्ड फोर्स आफ पैसन आफ्नेन वीथ बिटरली, ब्रूइल दोज आफ फार्मर सिम्पली शेड ए फ्यू दिगर्स इफ दे डू सो आल।”

३. ‘प्रणय’—प्रेम के मान्य घादघों में भी दोनों में महान अन्तर है। भवभूति ने जैसा उज्जल दाम्पत्य प्रणय का चित्र खींचा है वैसा ललित साहित्य में दुर्लभ है। कालिदास आदि कवियों ने सासारिक वासना से भरे काम का अधिकतर वर्णन किया है। भवभूति की दृष्टि में सच्चा और स्वर्गीय प्रेम वह है जो मदा एक सा सुखद, शाश्वत और बिना किसी बाह्य कारणों के अलौकिक और आत्मिक होना है।

“अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगुणं, सर्वास्ववस्थासु यत्।” १।३६

“व्यतिपन्नति पदार्थानन्तरः कोऽपि हेतु-

र्न यत्तु बहिरुपाधोन् प्रीतयः संश्रयन्ते।” ६।१२

इन्हीं उपर्युक्त विनिष्टताओं के फलस्वरूप प्राचीन बालोचक मानते थे—‘उत्तरे रामचरिते भवभूतिविशिष्यते।’

४. प्रभाव—भवभूति और कालिदास की कृतियों के तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि भवभूति पर कालिदास का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। भवभूति ने अनेक भावों की प्रेरणा कालिदास से प्राप्त की है। उत्तर का अंश अ क में स्थित चित्रदर्शन दृश्य रघुवध के १४।२५ से प्रभावित है। उत्तर का छठा अंश शाकुन्तल के सातवें अंक से कुछ दूर तक प्रभावित है। मालतीमाधव का नवा अंक विक्रमोर्वशीय के षोड़े अंक से पर्याप्त मिलता है। मालतीमाधव मेघदूत का कालिदास के मेघदूत से प्रत्यक्ष रूप से साम्य रखता है।

भारतीय नाट्य साहित्य के इन दो चरमोच्च नक्षत्रों के विषय में तुलनात्मक अध्ययन के लिए द्विजन्द्रलाल राय ने कहा था—

“विद्वत्साहित्य में, प्रसन्नता की पवित्रता में भाव की तरंग प्रतीका में, भाषा के सामर्थ्य में और हृदय के माहारम्य में उत्तररामचरित श्रेष्ठ है, तथा शकुन्तली की विचित्रता में, कल्पना की शोभलता में, मानवचरित्र के सूक्ष्म विश्लेषण में भाषा की सरलता और सतितता में अभिज्ञान शाकुन्तल श्रेष्ठ है।”

संस्कृत साहित्य में यह दोनों नाटक अद्वितीय हैं। अभिज्ञान शाकुन्तल शरद्वस्तु की पूर्ण चांदनी है, तो उत्तर रामचरित नक्षत्र खचित् भोल आकाश है। एक व्यञ्जन है तो दूसरा हवि। एक वसन्त है तो दूसरा पावस। एक नृत्य है तो दूसरा मधु। एक उपभोग है तो दूसरा पूजन।

उत्तर में प्रयुक्त छन्द और अलंकार

उत्तर के सात अंशों में २५६ पद्य हैं, जिसमें १९ छन्द व्यवहृत हैं। अनुष्टुप ९१ बार, शिखरिणी ३१ बार, वसन्ततिलका २६ बार, शार्दूलविक्रीडित २५ बार, मालमारिणी १, भार्या १ बार, वसन्त १ बार, मालिनी १७ बार, रघोद्धता ३ बार, जालिनी ५ बार, इन्द्रवज्रा और उपजाति ६ बार, पुष्पिताम्रा ५ बार, द्रुतविलम्बित २ बार, पृथ्वी ३ बार, मनुभाषिणी और हरिणी ८ बार, प्रहृषिणी ३ बार, मन्दाजान्ता १३ बार—

कविने प्रयुक्त किया है।

उत्तर के पद्यों में मुख्यतः भवभूति न ३६ अलंकारों का प्रयोग किया है। उनमें ४७ बार, उत्प्रेक्षा २८ बार, काव्यलिङ्ग १७ बार, अर्थान्तरन्यास १३ बार, सकार १२ बार, रूपक ११ बार, तुल्योगिता १० बार, समृष्टि ८ बार, निदर्शना ७ बार, त्रिपद ६ बार, स्वभावोक्ति-व्यतिशयोक्ति-अर्थापत्ति प्रत्येक पाच-पाच बार, सन्देह और दृष्टान्त प्रत्येक चार-चार बार, परिमर्या ३ बार, पर्याय-दीपक-विरोधाभास-विशेषोक्ति आक्षेप प्रत्येक दो दो बार, अनुमान-परिणाम-स्मरण यमक विभावना-अनुप्रास-समाहित-अप्रस्तुतप्रशंसा-श्लेष अपहृति-तदनुप-भाषिक-चल्लेख-अतिरेक अलंकारों का एक प्रयोग एक बार हुआ है।

उपयुक्त १९ छन्दों और ३६ अलंकारों का सफल प्रयोग कवि के प्रौढ़त्व और अधिकार की सूचना देता है।

१



उत्तर माधुरी

(उत्तर रामचरित के कतिपय सुन्दरतम श्लोकों का संकलन)
प्रथम अंक—

१—सूत्रधार.—य नृक्ष्माणमियं देवो वाग्धरयेवानु धर्तते ।

उत्तरं रामचरितं सत्प्रणीतं प्रयोदयते ॥२॥

अन्वय—इयं वाक् देवो वरया इव यं नृक्ष्माणम् अनुवर्तते ।

तत्प्रणीयम् उत्तर रामचरितं प्रयोदयते ।

अनुवाद—यह सरस्वती देवी वरदायिनी केरी की तरह जिस बाहुण भवभूति का अनुगमन करती है, उसके बनाये हुये उत्तर रामचरित का हम अभिनय करेंगे ।

२—सूत्रधार—सर्वथा व्यवहर्तव्यं कुतो ह्यवचनीयता

यथास्त्रीणां तथा वाचां माधुत्वे दुर्जनो जनः ॥५॥

अन्वय—सर्वथा व्यवहर्तव्यम्, अवचनीयता कुतः, हि जतो यथा

स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनः ।

अनुवाद—सब प्रकार से व्यवहार करना चाहिए, पर निर्दोषता

कैसे हो सकती है, क्योंकि लोक जैसे स्त्री के पातिव्रत्य में

रही तरह बचन की निर्दोषता में भी दुर्जन दोषदर्शी होता है ।

३—राम—कष्टं जनं कुलधनैरनुच्छिजनीयं

स्तप्तो यदुक्तमशिवं नहि तत् क्षमं ते ।

नैसर्गिकी सुरभिः कुसुमस्य सिद्धा

मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरव ताडनानि ॥ ४ ॥

अन्वय—कुल धने जनः प्रनुच्छिजनीय इति कष्टम्, तत् नः यत्

अशिवम् उक्तम् तत् ते नहि क्षमम् । सुरकिणः कुसुमस्य
 मूढिर्न स्थिति नैमनिकी सिद्धा, चरणैः अवताऽनानि न ।
 अनुवाद—दुय है, कुल का यश ही घब है जिसका ऐसे व्यक्तियों
 द्वारा लोक की प्रसन्न करना ही पड़ता है । इस लिए हम
 लोगो को जो भयानक बात कही गयी है, वह तुम्हारे सबन्ध
 में उचित नहीं है । क्योंकि सुगन्धित पुष्प का शिर पर
 रहना स्वभावसिद्ध है परन्तु उसका पैरो तले कुचला जाना
 स्वभावविद्ध नहीं है ।

४-रास—प्रतनुविरलै प्रान्तोन्मीलनमनोहर कुन्तलै
 दर्शनकुसुमैर्मुग्धान् लोकं शिशुर्दधती मुग्धम् ।
 ललितललितै ज्योत्स्ना प्रायैरकृत्रिम विभ्रमै
 रकृत मधुरैश्चाना मे कुतूहलमङ्गकै ॥ २० ॥

अन्वय—प्रतनुविरलै प्रान्तोन्मीलनमनोहर कुन्तलै दशनकुसुमैः
 मुग्धान् लोकमुप दधती शिशु ललितललितै ज्योत्स्नाप्रायै
 रकृत्रिमविभ्रमै मधुरै अङ्गकै मे अम्बाना कुतूहलम् अकृत ।

अनुवाद—प्रति सूक्ष्म तथा विरल एक दूसरे से न सटे हुये भीर
 मुल से प्रति भागो कशोलो पर सह्राते हुये केशो से, तथा
 कलियों के समान दाँतो से, सुन्दर दिखाई पड़ने वाले मुल
 को धारण करती हुई, शैशव अवस्था में वर्तमान, यह
 जानकी भी अत्यन्त सुन्दर, चादनी के सदृश, स्वामाविक
 विभावो में युक्त तथा प्यारे लगने वाले छोटे छोटे अङ्गो
 में मरी मातामा के दर्शनोत्सुनय को उत्पन्न करती थी ।

५-अलमललित मुग्धान्यध्व सङ्गनात् रोदा
 दशिथिलपरिगम्भैर्दत्त संवाहनानि ।
 परिमृष्टमृणाली दुर्वलान्यङ्ग कानि
 त्वमुरसि मम कृत्वा यत्र निद्रामवाप्ता ॥ २१ ॥

अन्वय—यत्र त्वम् अश्वसञ्जातखेदात् असततलिनमुग्धानि
अशिथिलपरिरम्भै दत्त सवाहनानि परिमृदित मृणाली-
दुर्वंसानि मङ्गलानि मम उरसि कृत्वा निद्राम्, भवाम् ।

अनुवाद—जिस स्थान पर, मार्ग से उत्पन्न बकावट के कारण जड़ीभून,
शिथिल और मनोहर, गाढ़ भालिङ्गनों से ढकाये हुये तथा
मसले हुये पतले कमलनाल के समान दुर्वंस कोमल भ गो को
मेरे वक्ष स्थित पर रखकर तुम निद्रा को प्राप्त हुई, वह
प्रदेश किस प्रकार मुनाया जा सकता है ।

६—राम—किमपि किमपि मन्दं मन्दमासक्ति योगा-
दशिरलित कपोल जल्प सौर व्रमेण ।
अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्यो,
रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरसीत् ॥२७॥

अन्वय—आसक्तियोगात् अविरलितकपोल किमपि किमपि मन्द
मन्दम् अत्रमेण जल्पतो अशिथिलपरिरम्भ व्यापृतैकै
कदोष्यो मविदितगतयामा रात्रि. एव व्यरसीत् ।

अनुवाद—प्रेमासक्ति के कारण कपोल सटा कर धीरे धीरे बिना
क्रम के जो कुछ कहते हुये तथा एक एक बौह को गाढ़
भालिङ्गन में निरत करते हुये हम दोनों के बिना प्रहरों
का पता पाये रात ही बीत गई थी ।

७—लक्ष्मण—अथेदं रक्षोभिः कनकहरिच्छद्मविधिना,
तथा वृत्तं पापैर्व्यथयति यथा क्षालितमपि ।
जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरायं चरितै-
रपि आवा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् ॥२८॥

अन्वय—अथ पापै. रक्षोभिः कनकहरिणच्छद्मविधिना इदं तथा
वृत्तं यथा क्षालितमपि व्यथयति । शून्ये जनस्थाने
विकलकरणैः आयं चरितै आवा अपि रोदिति वज्रस्य
अपि हृदय दलति ।

अनुवाद—शूषणखा की घटना के अनन्तर पापी राक्षसों ने सुवर्ण-
मृग की कपटविधि से ऐसा किया, जो कि बदला लेने पर
भी अभी तक दुख देता है । निर्जन जनस्थान में नेत्र आदि
इन्द्रियों की क्रिया में असमर्थ धार्यों के चरित्रों से पत्थर
भी आँसू गिराता है और वज्र का हृदय भी विदीर्ण
होता है ।

८-राम—म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि
सन्तर्पणानि सरलन्द्रियमोह कानि ।
एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाक्षि ।
कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि ॥३६॥

अनुवाद—सरोरुहाक्षि ! ते एतानि सुवचनानि म्लानस्य जीव
कुसुमस्य विकासनानि सन्तर्पणानि सरलन्द्रियमोहनानि
कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि ।

अनुवाद—हृ पचलोचने ! तुम्हारे ये कोमल वचन मुरझाये हुये
जीवनपुष्प को विकसित करने वाले, उत्तम प्रकार से तृप्त
करने वाले, सम्पूर्ण इन्द्रियों के मोहजनक कर्णों में
अमृतस्वरूप और रसायन की तरह मन की शक्ति को
बढ़ाने वाले हैं ।

९-राम—इह गेहे लक्ष्मोरियममनवर्तिर्नयनयो-
रमात्रस्या स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरस ।
अयं बाहु कण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिकसर
स्त्रिमन्या न प्रेयो यदि परमं महास्तु विरह ॥३७॥

अनुवाद—इस गेहे सहमी, इस नयनयो. अमृत वर्ति., इसी
मस्या स्पर्श वपुषि बहुलश्चन्दनरस, अयं बाहु
(नयस्त) बाहु शिशिरम सृण मौक्तिकसर, अस्या किम्
न प्रेय ? तु विरह यदिपरम् असह्य ।

अनुवाद—यह सीता घर में सटकी है यह नेत्रों में धमृत की
 खोजनशनाका है, इसका यह स्पर्श शरीर में गाढ़ा चन्दन
 का रस है, यह भुजा कण्ठ में गोवल तथा बिकना
 मुत्ताहार है । इसका क्या नहीं अतिशय प्रिय है,
 यदि अत्यन्त असहनीय है तो केवल इसका विरह ही ।

१०—राम —अद्वैत सुगन्दु सयोरनुगतं सर्वास्वस्थामु यत्
 विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रस ।
 कालेनावरणात्पथात्परिणते यत्प्रेमसारे स्थितम्
 भद्रं तस्य सुमानुपरय यथमप्येकं हि तत्प्राप्यते ॥३६॥

अन्यम—यत् सुगन्दु खबोः अद्वैत, सर्वास्तु अवस्थासु अनुगत, यत्र
 हृदयस्य विश्राम, यस्मिन् रस अहार्यं यत् कालेन
 आवरणात्पथात् परिणते प्रेमसारे स्थित, तस्य सुमानुपरय
 तत् एकं भद्र कथमपि हि प्राप्यते ।

अनुवाद—कुछ प्रेम जीवन की प्रत्येक परिस्थिति में एक रस रहता
 है । हृदय को उसमें एक अनिवर्चनीय सुख और शान्ति
 की अनुभूति होती है । अवस्था का उस पर कोई प्रभाव
 नहीं पड़ता । बाधक्य के कारण उसकी सरसता में कोई
 कमी नहीं आती । कुछ दिनों के बाद जब तकोष या
 दुःख का भाव दूर हो जाता है, तब वह और भी अधिक
 परिपक्व एवं प्रगाढ़ हो जाता है । ऐसे कल्याणकारी
 पवित्र दाम्पत्य प्रेम की प्राप्ति बड़े भाग्य से ही किसी
 को होती है ।

द्वितीय अंक—

११—तापसी—प्रियप्राया वृत्तिर्विनयमधुरो वाचि नियम.
 प्रकृत्या कल्याणी मतिरनवगीत परिचय ।

पुरो वा पश्चाद्वा तदिदमविपर्यासितरसं
रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते ॥२॥

अन्वय—पापना वृत्ति प्रियप्राया, वाचनियम विनयमपुष्ट भतिः
श्रद्धा कल्याणी, परिचय. अनवगोतः, तद्दद पुरो वा
पश्चाद्वा अविपर्यासितरसम् अनुपधि विशुद्ध रहस्यं
विजयते ।

अनुवाद—सज्जनो का व्यवहार अनिश्चय भाङ्गिहकारक होता है,
उनकी बारीकी का समय विनय के साथ मधुर होता है, बुद्धि
स्वभाष से ही मंगलकारिणी होती है, परिषय निर्दोष
होता है, मिलन पहिले या पीछे अनुशय का उत्पन्न न
करने जाना, निश्चय एव पवित्र होता है और इस प्रकार
उनका चरित्र सर्वोत्कृष्ट होता है ।

१०-आत्रेयी-वितरति गुरु प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जडे
न तु खलुतयोर्ज्ञानेशक्तिं करोत्यपहन्ति वा ।
भवति हि पुनभूयान्भेद फलप्रति, तथाया ॥
प्रभवति शुचिबिम्बप्राहे मणिर्नमूदादयः ॥४॥

अन्वय—गुरु यथा प्राज्ञे तथैव जडे विद्या वितरति, तुतयो. ज्ञाने
शक्तिम्, न करोति, वा न अपहन्ति, खलु । फल प्रति
पुन भूयान् भेदो भवति हि, तद् यथा शुचि. मणि बिम्ब-
प्राहे प्रभवति मूदादय न ।

अनुवाद—गुरु जिस प्रकार बुद्धिमान् छात्र को, उसी प्रकार मन्द
बुद्धि छात्रको भी तिया देता है। उन दोनों के बोध में न
सामर्थ्य देता है और न उनका नाश ही करता है । ऐसा
होने पर भी फल में बहुत भेद होना है, जैसे कि हीरा
आदि निर्मल मणि प्रतिबिम्ब के ग्रहण करने में समर्थ
होते हैं, परन्तु मिट्टी आदि पदार्थ प्रतिबिम्ब ग्रहण
करने में समर्थ नहीं होते ।

१३-वासन्तो-वज्रादपि कठोराणि मद्भि कुसुमादपि ।

लोकोत्तराणां चेतांसि कीदृि विज्ञातु मर्हति ॥७॥

अन्वय-वज्रादपि कठोराणि कुसुमादपि मद्भि लोकोत्तराणाम्,
चेतांसि विज्ञातुम् कः मर्हति ।

अनुवाद-अलौकिक महापुरुषों के वज्र से कठोर तथा पुष्प से भी
कीमत्त हृदयों को भला कौन जान सकता है ।

१४-वासन्ती-कण्टूलद्विपगण्डपिण्डकयणोत्कम्पेन सम्पातिभिः
धर्मसंसितवन्धनैः स्वकुसुमैरर्चन्ति गोदावरीम् ।
छायापस्फिरमाण विष्किर मुखन्याकृष्टकीटस्यचः
कूजत्वलान्तकपोतकुक्कुटकुलाः धूलेकुलायद्रुमाः ॥८॥

अन्वय-छायापस्फिरमाण विष्किर मुखन्याकृष्ट कीटस्यच,
कूजत्वलान्तकपोत कुक्कुट कुलाः, धूले कुलायद्रुमाः कण्टूल
द्विपगण्डपिण्डकयणोत्कम्पेन सम्पातिभिः धर्मसंसितवन्धनैः
स्वकुसुमैः गोदावरीम् अर्चन्ति ।

अनुवाद-छाया में जीविका के लिए किरौदते हुए पक्षियों की चोंचों
से छींचकर निकाले गये हैं कीट जिनसे ऐसी छातों वाले,
कूजते हुए नीर से दमकत कबूतरों तथा मुर्गों के समूह हैं
जिनपर ऐसे, ठट पर स्थित, पक्षियों के घोंसलों से युक्त-
बूझ, हाथियों की कण्टू युक्त कपोलभित्तिपों के घपंण के
कारण हिलने से समूह रूप में नीचे गिरने वाले घोर
घाम के कारण शिथिल वृत्तों वाले अपने पुष्पों से
गोदावरी को पूजते हैं ।

१५-रामः-स्तिग्धश्यामाः क्वचिदपरतो भीषणामोहरूचाः
स्थाने स्थाने मुखर ककुभोभारुकृतैर्निर्कराणाम् ।
एते तीर्याश्रमगिर सरिदगर्त कान्तार मिश्राः
संदृश्यन्ते परि चित्तसुखो दण्डकारण्यभागाः ॥९॥

अन्वय—क्वचित् स्निग्धश्यामा. अपरतः भीषणाभोगरूपाः स्थाने-
स्थाने निर्भराणां झाडकृतैः मुखरककुम् तीर्याथमगिरि
सङ्गित्तकान्तारमित्राः परिचितभुवःएते दण्डकारण्यभागाः
स दृश्यन्ते ।

अनुवाद—कहीं बिक्ने और श्यामल तथा दूसरी ओर
भयङ्कर विस्तार के कारण रुखे, स्थान स्थान पर झरनों
की भँकार से मुखरित दिशाओं वाले, तीर्थ, आश्रम, पर्वत,
नदी, गड्ढे और दुर्गम मार्ग वाले तथा परिचित भूमि
वाले दण्डकारण्य के प्रदेश दिखाई दे रहे हैं ।

६-शम्भूक-

निष्कूजस्तिमिता क्वचित्क्वचिदपि प्रोच्चण्डसत्त्वस्वनाः
स्यच्छसुप्तगभारभोगभुजग श्वास प्रदीप्ताग्नयः ।
सीमान. प्रदरोदरेषु विरलस्वल्पाम्भसो यास्वयं
तद्वद्भि. प्रतिसूर्यकैरजगरस्वेद द्रव पीयते ॥१६॥

अन्वय—सीमान क्वचित् निष्कूजस्तिमिता; क्वचि
दपि प्रोच्चण्डसत्त्वस्वना स्वेच्छा सुप्तगभीर भोगभुजग-
श्वास प्रदीप्ताग्नयः प्रदरोदरेषु विरलस्वल्पाम्भसः यासु
तूप्यद्भिः प्रतिसूर्यकं अयम् अजगरस्वेदद्रव. पीयते ।

अनुवाद—इस भीषण वन में कहीं पूर्ण नीरवता है और कहीं
हिलपनुओं की प्रबल गर्जना सुनाई पड़ती है, कहीं स्वेच्छा
पूर्वक साय हुए, गम्भीर फूँकार करने वाले रावों के
निश्वासी से प्रज्वलित होकर आग लग गई है, कहीं गड्ढों
में थोड़ा सा पानी झिनमिला रहा है और कहीं प्यास के
मारे विलस गिरगिट अजगर का पसीना भी रહે है ।

१७-राम—न किञ्चिदपि कुर्वाण सौख्यैर्दुःस्थान्यपोहति ।
तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियोजन. ॥१६॥

अन्वय—यो जनो यस्य प्रियः किञ्चित् न कुर्वाणोऽपि सोऽयं दुं छानि
अपोहति, हितत् तस्य किमपि द्रव्यम् ।

अनुवाद—जो अनुप्य जिसका प्यारा है, वह कुछ न करता हुआ भी
सामीप्य मात्र से उत्पन्न सुखों के द्वारा दुःखों का नाश
करता है, इसलिए वह उसका अनिवर्चनीय पदार्थ है ।

२०. शम्भूकः—इह समदशकुन्ताक्रान्त वानीर वीरूत्
प्रसवसुरभिशीत स्वच्छतोया वहन्ति ।
फलभरपरिणाम श्याम जम्बूनिकुञ्ज
स्थलन मुरार भूरि स्रोतसोनिर्भरिण्यः ॥२०॥

अन्वय—इह समदशकुन्ता क्रान्त वानीरवीरूत् प्रसवसुरभिशीतस्वच्छतोयाः
फलभरपरिणाम श्याम जम्बूनिकुञ्जस्थलनमुरारभूरिस्रोतसः निर्भरिण्यः वहन्ति ।

अनुवाद—यहाँ, मदवाले पलियों से भाजस्तलताओं के पुष्पो से सुगन्धित
शीतल तथा निर्मल जल वाली, कलों की राशि के कारण
श्याम बरुण वाले जामुन वृक्षों के कुञ्जों में टकराकर गिरने
से शब्दायमान प्रबल प्रवाह वाली पहाड़ी नदियाँ बहती हैं ।

२१ राम—चिरोद्वेगारम्भी प्रसृत इव तीव्रो विपरसः ।
कुतश्चित्संवेगान्निहित इव शस्यस्य शकलः ।
प्रणो रुदप्रन्थिः स्फुटित इव हन्मर्मणि पुनः ।
पुराभूतः शोको विकलयति मां नूतन इव ॥ २१ ॥

अन्वय—चिरोद्वेगारम्भी प्रसृतः तीव्रः विपरस इव, कुतश्चित्संवेगात्
निहितः शस्यस्य शकल इव, हन्मर्मणि रुदप्रन्थिः स्फुटितो
भव इव, पुराभूतः शोकः नूतन इव पुनः मां विकलयति ।

अनुवाद—बहुत अधिक दुःख आज विप के समान मेरे हृदय में भर गया
है । ऐसा सगता है मानों मेरे मन में लगे हुए काटे को किसी
ने खूब जोर से पकड़ कर हिला दिया है । जो मेरे मन का
शोक समय की दूरी से कुछ घट रहा था वह मानो फिर

हरा हो गया और मुझे व्याकल बनाने लगा ।

२२ शम्बूक—गुञ्जत्कुञ्जकुटीर कौशिक घटाधुत्कार वत्कीचक
स्तम्बादम्बरमूकमौ कुलिकुल कौञ्चामिधोऽयं गिरि ।
एतस्मिन्प्रचलाकिनां प्रचलता मुद्धेजिता कूजतै
रुद्धेल्लन्ति पुराणरोहिणतरुस्कन्धेषु कुम्भीनसाः ॥ २६ ॥

अन्वय—गुञ्जत्कुञ्जकुटीर कौशिक घटा धुत्कारवत्कीचक स्तम्बा दम्बर
मूकमौ कुलिकुल कौञ्चामिध अयं गिरि । एतस्मिन् प्रचलता
प्रचला किनाम कूजितै उद्धेजिता कुम्भीनसा पुराण रोहिण
तरुस्कन्धेषु उद्धेल्लन्ति ।

अनुवाद—यह कौञ्च नामक पर्वत है । इसपर गुजायमान कुञ्ज
कुटीरों में रहने वाले चतुर्भुज के पूर शब्द मिश्रित बासों के
गुच्छों के ऊँचे शब्दों से भयभीत कीड़े शब्द द्रव्य हैं । यहाँ
पर चलते हुए मीनों के शब्दों से डरे हुए सर्प पुराने चन्दन के
वृक्षों के स्कन्धों में इधर उधर रेंग रहे हैं ।

२३ एतेते कुहरेषु गद्गद नगद्गोदावरी वारयो
मेघालम्बित मौलिनील शिखरा क्षोणीभृतो दाक्षिणाः ।
अन्योऽन्यप्रतिधातसङ्कल चलत्कल्लोल कोलाहलै
सत्तालास्तइमे गभीरपयस पुण्या सरित्सङ्गमा ॥ ३० ॥

अन्वय—कुहरेषु गद्गदनदद् गोदावरी वारयो मेघालम्बित मौलिनील
शिखरा त एते दाक्षिणा क्षोणीभृत । अन्योऽन्य प्रतिधात
सङ्कल चलत्कल्लोलकोलाहलै उक्तास्ता त इमे गभीर पयस,
पुण्या सरित्सङ्गमा ।

अनुवाद—गुफाओं में बहती हुई गोदावरी की धारायें यही हैं । दाकिन
के ये वही पर्वत शिखर हैं जिनपर लिपटे हुए बादल उह
नीलिमा प्रदान कर रहे हैं । यही पर नदियों के ये पवित्र
सङ्गम हैं जिनका जल गहरा है और जो वेग से उठती गिरती
हुई सहरो की भीषण ध्वनि से भयंकर है ।

तृतीय अंक

२४. अनिभिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढधनव्ययः ।

पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः ॥१॥

अन्वय—गभीरत्वात् अनिभिन्नः अन्तर्गूढधनव्ययो रामस्य करुणो रसः
पुटपाकप्रतीकाशः ।

अनुवाद—राम का करुण रस यर्थात् सीताविशोगजन्य शोक पुटपाक के
समान है, जो गम्भीरता के कारण व्यक्त तो नहीं होता, किन्तु
भीतर छिपी हुई गहरी वेदना से युक्त है ।

२५. परिपाण्डु दुर्वल कपोलसुन्दरं

दधती विलोलकवरीकमाननम् ।

करुणस्य मूर्तिरपवा शरीरिणी

विरहव्यथेव वनमेति जानकी ॥५॥

अन्वय—परिपाण्डु दुर्वल कपोल सुन्दर विलोलकवरीकम् मानन दधती
जानकी करुणस्य मूर्तिरपवा शरीरिणी विरहव्यथा इव वनम्
एति ।

अनुवाद—(गोदावरी के भगवत् जल वाले जलाशय से निकल कर यह)
अति पाण्डुवर्ण बाने और कुछ कपोलों से सुन्दर तथा खुले
हुए होने के कारण चबल केशविन्यास से युक्त मुल की धारण
करती हुई, करुण रस की मूर्ति भगवा देहधारिणी।
विशोगवेदना-सी सीता वन में प्रवेश करती है ।

२६. वासन्तो-त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं

त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे ।

इत्यादिभिः प्रियशतैरुप्य मुग्धां

तामेव शान्तमथवा किमतः परेण ॥२६॥

अन्वय—त्वं जीवितम्, त्व मे द्वितीयं हृदयम्, त्वम नयनयोः कौमुदी ।
त्वम् अ मे यमृतम् अति, इत्यादिभिः प्रियशतैः मुग्धाम् अनुप्य
ताम् एव-अथवा शान्तम्, अतः परेण किम् ?

अनुवाद—'तुम मेरा जीवन हो, तुम मेरा दूसरा हृदय हो, तुम मेरी भाँसों में खिखरी हो, तुम शरीर पर अमृत हो, दूरगति और जो पिय नयनों से भोली सीता को अनुमन करने उन्हीं को भगवा मत, इससे भागे कहने से क्या फल है ?

२७. राम—अतएव शायन कुर्यान्निशितो दृष्टे—

इत्येव पश्चिच्छ्रितगर्भमशान्तामगा ।

ज्योत्स्नामभी मृदुमालममाल मस्या

मन्त्र्या दूरगतातया निमतं विस्तृता ॥२८॥

अन्वय—अतएव शायन कुर्यान्निशितो दृष्टे पश्चिच्छ्रितगर्भमशान्तामगा तस्या ज्योत्स्नामभी मृदुमाल मृदुमालमस्या भगवति यः मन्त्र्या दूरगतातया निमतं विस्तृता ।

अनुवाद—अरे हृदय मेरी हीनता को तरह अनिश्चित तबो वाली सीर भैपते हृदय मेरे के भाव से भलसित होने वाली सीता का ज्योत्स्ना से बने हुए की तरह, योगल एवं लक्षित मृदुमाल के मुख्य और लता समुक्त शरीर भाग्यभोली जगुभों द्वारा भगवतोभ मन्त्र हो गया होता ।

२८. राम—पूरोत्तीक्षे सदाकुरु परीक्षा पतिनिगा ।

श्रीनेष्टोभं अ हृदयं मलापरेव भागते ॥२९॥

अन्वय—सदाकुरु पूरोत्तीक्षे परीक्षा पतिनिगा (परिण), हृदयं अ शोक कोभे मलापरेव भागते ।

अनुवाद—सरोवर में यथाज्ञ का आभिर होने पर परिणत भगवान् माहय जल निजलने के सिद्ध भगवा हुमा सोता—सा भागे ही प्रतिपद होता है । इसी तरह हृदय भी शोक से भंगल होने पर भित्तापों से ही खिलत बिगा जाता है ।

२९. १

— — — — —

म विगतो,

— — — — — न शुद्धचित्तोत्तमम् ।

व्यस्रयति तनून्मन्तर्दाहः करोति न भस्मसान् ।

प्रहरति विधिर्मम च्छेदी न कृन्तति जीवितम् ॥३१॥

अन्वय—हृदय शोकोद्वेगाद् दलति द्विधा तु न मिथ्ये, विकृतः कायः मोहं वहति चेतना न मुञ्चति । अन्तर्दाहः तनून् ज्वलयति भस्मयान् न करोति, ममच्छेदी विधिः प्रहरति जीवितं न कृन्तति ।

अनुवाद—हृदय शोक से विघ्नित होने में कारण विदीर्ण होता है, लेकिन वो टुकड़ों में विभक्त नहीं होता, शोक से विह्वल शरीर मोहधारण करता है, लेकिन चेतन्य को नहीं छोड़ता; अन्तःकरण का सत्ताप शरीर को जलाता है, लेकिन भस्म नहीं करता, इसी तरह ममस्वयं को विदारण करने वाला माय प्रहार करता है, लेकिन जीवन को नष्ट नहीं करता है ।

३० राम—हा हा देवि ! स्फुटति हृदयं ध्वसते देहबन्धः
शून्यं मन्ये जगद्विरलं ज्वालमन्तर्बलमि ।
सीदन्नम्र तममि विधुरो मज्जती वान्तरात्मा
विध्वङ्मोहः स्रगयति कथं मंत्रमाग्यं करोमि ॥३८॥

अन्वय—हा हा देवि ! हृदय स्फुटति, देहबन्धो ध्वसते जगत् शून्यं मन्ये, अन्तः अविरलं ज्वालं ज्वलामि, सीदन् विधुरः, अन्तः-रामात्मा अग्रे तममि मज्जति इव, मोहो विध्वङ् स्रगयति, मन्दभाग्यं कथं करोमि ।

अनुवाद—हा हा देवि, हृदय फट रहा है, देह का बन्धन क्षिपिल पड़ रहा है । ससार को शून्य प्रतीत कर रहा हूँ अविश्रान्त ज्वालामोहि भीतर जल रहा हूँ अन्तर्बादयुक्त हृदय विकल अन्तःकरण गाढ़ अन्वकार में मानो डूब रहा है । चारों ओर से मुञ्छों घेर रही है । मैं मन्दभाग्य वाला क्या करूँ !

३१ राम एको रम करुण एव निमित्तमेतान्
मित्रः पृथक् पृथगिव श्रयते विवेतन् ।

आयतं बुद्बुदतरङ्गमयान्निभारं

नम्भो यथा सलिलमेव तु तत्समस्तम् ॥ ४७ ॥

अन्वय—एकः करुणा रम एव निमित्तभेदात् भिन्न पृथक् पृथक् विवर्तन्
अयन इव, यथा अम्भ आवर्तं बुद्बुद तरङ्ग मयान विकारान्
अयनः तुल्य समस्त सलिलम् एव हि ।

अनुवाद—एक करुण रस ही निमित्तभेद से भिन्न हावा हवा पृथक्
पृथक् शृंगार आदि परिणामों को आश्रय देता है ऐसा
प्रतीत होता है जैसा एक ही जल भँवर, बुद्बुद घोर तरङ्ग
रूप विकारों का आश्रय करता है पर वास्तव में यह सब
जल ही है ।

चतुर्थ अंक

३. अन्वयती सन्तानवाहीभ्यपि मानुषाणां दुःखानि सद्गन्धु
वियोग जानि ।

दृष्टे जने प्रेयमि दुःखानि स्रोत मन्त्रैरिय
सप्तयन्ते ॥ ८ ॥

अन्वय—मानुषाणां सन्तान वाहीभ्यपि सम्बन्धवियोग जानि दुःखानि
प्रेयमि जन दृष्ट दुःखानि (भूत्वा) स्त्रा सप्तयन्ते इव सप्तयन्ते
अनुवाद—मनुष्यों के अविच्छिन्न माय में प्रवाहित हान वाल गन्धु
वियोगजम्ब दुःख सप्तयन्त प्रिय व्यक्ति का साक्षात्कार हान पर
प्रगल्भ हाकर अमय्य धारावा के रूप में बहने लगत है ।

१३ अरुन्वति शिशुर्वाशिष्या वा यदमि मम तन्निष्ठमु तथा
विशुद्धे कर्त्तव्यमस्तस्यि तु मम भक्ति दृढयति ।
शिशुर्न स्त्रैश्च वा भवतु ननु वन्द्यामि जगतां
गुणा. पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्ग न च धय ॥ ११ ॥

अन्वय—तं मम शिशुर्वा शिष्या वा यत् अस्मि, तथा निष्ठतु, स्वयि
विशुद्धे कर्त्तव्यमस्तु मम भक्ति दृढयति । ननु शिशुस्त स्त्रैश्च वा
भवतु, जगता वन्द्या अस्मि, गुणिषु गुणाः पूजास्थानं, न च

लिंग न च वयः ।

अनुवाद—तुम मेरी बेटी हो या शिष्या हो, जो सम्बन्ध है वह वैसा ही रहे परन्तु तुममें जो पवित्रता का आधिक्य है, वह मेरी भक्ति को दृढ़ करता है । तुममें बालभाव हो या स्त्रीभाव तुम संसार की बन्दनीया हो । गुणियों में गुण ही पूजा के स्थान होने हैं; स्त्रीत्व, पुंस्त्व या जटा कषाय वस्त्र आदि विह्व विशेष और उच्च पूजा के स्थान नहीं होते हैं ।

३४ अरुन्धतो आविर्भूतज्योतिषा ब्राह्मणानां ये ऋणहारास्तेषु
मा संशयो भूत् ।

भद्रा ह्येषा वाचि लक्ष्मीर्निपक्ता नैते वाचं
विप्लुतार्या वदन्ति ॥ १८ ॥

अन्वय—आविर्भूत ज्योतिषा ब्राह्मणानां ये ऋणहाराः तेषु सद्यो मा भूत् । हि एषा वाचि भद्रा लक्ष्मीः निपक्ता एत विप्लुतायी वाच न वदन्ति ।

अनुवाद—प्रकट हो गई है ब्रह्मज्योति बिनकी ऐसे बिजो के जो वचन हैं, उनमें तुम्हें संदेह न होना चाहिए । इनकी वाणी में कल्याणकारिणी सिद्धि नित्य सन्निहित रहती है । वे अवधार्य वाणी को नहीं बोलते हैं ।

३५ जनक चूडाचुम्बितकङ्क पत्रमभितस्तूणीद्वयं पृष्ठतो
भस्मस्तोक पवित्र लाञ्छनमुगे धत्ते त्वचं रौरवीम
मौर्व्या मेखलया नियन्त्रितमयी वासश्च माञ्जिष्ठक
पाणौ कामुकमक्षसूत्रबलयं दृष्ट्वाऽपरः पैप्पलः ॥२०॥

अन्वय—पृष्ठतः अभितः चूडाचुम्बित कङ्कपत्र तूणीद्वयं, भस्मस्तोक पवित्र लाञ्छनम् उरः, रौरवी त्वच धत्ते, मौर्व्या मेखलया नियन्त्रित माञ्जिष्ठक वासः, पाणौ कामुकम् अपरः पैप्पलो दण्डः आस्तः ।

अनुवाद—कङ्कपत्र से युक्त पीठ के दोनों ओर चोटी को छूने वाले दो तरकशों की, थोड़ी सी भस्म से पवित्र चिह्न वाली छाती

को घोंग रुक नामक मृग के चमड़े को भी यह धारण कर रहा है। इसके वक्षस्थल के नीचे चौबीस मैखला से बाँधी गई मजीठ की रम वाली धोती, हाथ में धनु, छाता माना और पीछे का दण्ड भी है।

३६ वदवः पश्चान् पुच्छं वहति विपुलं तच्च धूनोत्यजस्रं
दार्घ्यमायः स मरुति स्त्रस्तस्थ चत्वार एव ।
शङ्खाख्यसि प्रकिरति शकुनपिण्ड कानाम्ना मात्रान्
किं व्याख्यातैर्ब्रजयति स पुनर्दूमे हो हि याम् ॥ ३६ ॥

अन्वय—पश्चात् विपुल पुच्छ वहति, अजस्र धूनोति स दीर्घ प्रीको भवति, यस्य चत्वार एव सुराः शङ्खाणि अस्ति, व्याघ्रमात्रान् शकुत्पिण्डकान् प्रकिरति, व्याख्यातै किं ? स पुनः दूर व्रजति, एहि एहि याम ।

अनुवाद—वह शरीर के पीछे बड़ी पूँछ धारण करता है और उसे निरन्तर हिलाता रहता है। उसकी सम्बन्धी गर्दन होती है और उसके चार ही सुर होते हैं। वह वास खाता है और आम के फलों के बराबर लीद के टुकड़ों को खोड़ता है। बहुत कहने से क्या ? वह फिर दूर जा रहा है मामो मामो हम जाते हैं।

३७ लवः । याजिह्वया बलयितोत्कट कोटि दंष्ट्र
मुद्भूरिघोर घन घर्घर घोषमेतत् ।
ग्राम प्रसक्तहसदन्तक कवचत्रयन्त्र
जृम्भाणिष्ठम्बि विकटोदरमस्तु चापम् ॥ ३७ ॥

अन्वय—याजिह्वया बलयितोत्कट कोटिदंष्ट्रम् उद्भूरिघोरघनघरं घोषम् एतत् चाप ग्रामप्रसक्तहसदन्त कवचत्रयन्त्रजृम्भाणिष्ठम्बि विकटोदरम् अस्तु ।

अनुवाद—मोर्वीरूप भीम से वेष्टित, उन्नतकोटि रूप दो दंष्ट्राओं से युक्त और असह्य भयङ्कर तथा घने घर्घर शब्दों वाला यह

धनुष, निगलने में तत्पर, हेमता हुआ यमराज के मुख रूप
यन्त्र की जम्हाई का अनुकरण करने वाला मतएव यह
भयङ्कर मध्यभाग वाला हो जाय ।

पञ्चम अङ्क

३८ लव—

काम दुर्ये विप्र कर्पस्य लक्ष्मी कीर्तिं सूते दुर्हृदो निष्प्रलाति

शूर्द्धा शान्ता मातर मङ्गलानां धेनुं धीराः सूनुतां वाचमाहु ॥ ३०

अन्वय—काम दुर्ये प्रलक्ष्मी विप्रकर्पति कीर्तिं सूते दुर्हृदः निष्प्रलाति
मतः धीराः सूनुतां वाचमाहु शान्ता मङ्गलानां मातर
धेनुम् आहु ।

अनुवाद—सत्य और प्रिय वाली मनोरथ को पूर्ण करती है, दरिद्रता
को हटाती है कीर्ति को उत्पन्न करती है और शत्रुओं को
विनष्ट करती है । अतः सुधीमान सत्य और प्रिय वाली को
शुद्ध ज्ञान कल्याण दात्री एवं कामधेनु मुख्य कहते हैं ।

३९ लव पृथ्वास्ते न विचारणीय चरितास्तिष्ठन्सु कियमर्थते ?
सुःस्त्रीमथनेऽप्यकुण्ठयशसौ लोके महान्तो हि ते ।
यानि त्रीणि कुतोमुखा न्यपि पदान्यास्व न्वरायोधने
यद्वाक्यैराललिन्द्रसूनुनिधने तत्राप्यभिज्ञो जनः ॥ ३४ ॥

अन्वय—ये वृद्धाः विचारणीय चरिताः न तिष्ठन्सु किं वर्ण्यते ?
सुन्दरीमथनेऽपि अकुण्ठयशसः ते लोके महान्तः हि
सरायोधन यानि त्रीणि कुतोमुखानि पदानि अपि मासन् वा
इन्द्रसूनुनिधने यत् कौशल तत्र अपि जनः अभिज्ञः ।

अनुवाद—वे राम वृद्ध हैं । अतएव उनके चरित्र की आलोचना नहीं
करनी चाहिए । सुन्द की स्त्री ताड़का को मारने में भी
अप्रतिहत पश्चात्ते वे लोक में श्रेष्ठ ही हैं । धर के साथ
शुद्ध में तीन पय पीछे हटे थे, अथवा वालों के मारने में जो
निपुणता की थी उससे भी लोग परिचित हैं ।

१०—विश्राय मण्डपानिऋक्षुण्डयणितकिङ्किणीकधनु-
ध्वनद्गुग्गुणाटनाकनरालमोलाहलम् ।
प्रितत्य क्रिता शगनप्रिग्न पुन शूरयो
विचित्रमभिमतत भुवनभीममायोधनम् ॥१॥

अन्वय—मण्डपानिऋक्षुण्डयणितकिङ्किणीकध्वनद्गुग्गुणाटनाकनरालमोलाहलम्
ध्वनद्गुग्गुणाटनाकनरालमोलाहलम् धनु विनत्य परान अयिरत क्रितो शूरयो
पुन विविध भुवनभीमम आयाधनम् अभिमतत ।

अन्वय—एकमान नृएऽवना की भाति शङ्कायमान किङ्किण्या
बास तथा मोर्षी एक दानो नाका से भीषण कालाह्वन करने
बास धनुष का फैलाकर सब तार बाण छोड़त हुए दोनों
वीर का पुन प्र उचयजनक तथा ससार क लिए भयोत्पादक
युद्ध हो रहा है ।

म—११ त्रातु लोकानिप्रपरितान कायवानस्त्रवेद
ज्ञात्रो धर्म श्रिन इव तनुं त्रक्षमोशस्य गुप्त्यै ।
सामर्थ्यानामिप्र समुन्य , सश्रयो वा गुणाना-
माविर्भूय स्थित इव जगत्पुण्यनिर्माण राशि ॥१॥

अन्वय—लोकान त्रातु परिणत कायवान् अस्त्रवेद इव, ब्रह्मकोशस्य
गुप्त्यै तनु धित क्षात्रा धर्म इव, सामर्थ्याना समुदय इव,
गुणानां सश्रयो वा, जगत्पुण्य निर्माण राशि आविर्भूय
स्थित इव ।

अन्वय—लोकों की रक्षा करने के लिए धनुर्वेद मानो शरीरधारी हो
गया है । वदरूप निधि की रक्षा के लिए क्षात्र धर्म न मानो
शरीर धारण किया है । शक्तियों का मानो एक आधार म

मितकर आविर्भाव हुआ है। यह मुखों का मानो समूह है।
लोको के घर्मानुष्ठानों का समूह प्रकट होकर मानो स्थित है।

४२ रामः— व्यतिपजनि पदार्थानान्तर कोऽपि हेतु-
नं ग्लु वहिरूपाधीन प्रतीय- मंश्रयन्ते ।
विकमति हि पतद्भस्योदये पुण्डरीकम्
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः ॥१८॥

अन्वय—मान्तर कोऽपि हेतुः पदार्थान् व्यतिपजति, प्रतीय वहिरूपा-
धीन ग्लु न मंश्रयन्ते । हि पतद्भस्य उदयं पुण्डरीक विकसति,
च हिमरश्मौ उद्गते चन्द्रकान्तो द्रवति ।

अनुवाद—कोई आन्तरिक अनिर्वचनीय कारण ही पदार्थों या प्राणियों
में प्रीति सन्धान स्थापित करता है। प्रेम कभी बाह्य कारणों
पर आश्रित नहीं होता। देखो न, सूर्य के उदय होने पर ही
कमल खिलता है और चन्द्रमा के उदय होने पर ही चन्द्र-
कान्त मणि द्रवीभूत होती है।

४३ कुश — तथैव राम सीतायाः प्राणोभ्योऽपि प्रियोऽभवत् ।
हृदयं त्वेव जानाति प्रीतियोगं परस्परम् ॥१९॥

अन्वयः—तथैव रामः सीतायाः प्राणोभ्योऽपि प्रियः अभवत् । तु हृदय
एव परस्परम् प्रीतिमोग जानाति ।

अनुवाद—राम उसी तरह से सीता के प्राणों से भी अधिक प्रिय थे।
परन्तु हृदय ही परस्पर का प्रेम सम्बन्ध जानता है।

४४ रामः—चिरं ध्यात्वा ध्यात्वा निहित इव निर्माय पुरतः,
प्रवासे चार्वासं न रुलु न करोति प्रियजनः ।
जगज्जीर्णारण्यं भवति च कलत्रे ह्युपरते
कुङ्कुलानां राशौ तदनु हृदयं पश्यत इव ॥२०॥

अ-२२ — प्रवाम च चिर द्यात्वा निमाम पुरतः निहित इव प्रियजन
आवास न करानि (इति) न सन्तु । कलत्रं उपरते जगत्
जीलारण्य भवति हि, तदनु कुक्कुराणां राशौ हृदय पच्यते
इव ।

अनुवाद — प्रवाम काल में भी दोषवान् तब निरन्तर ध्यान करके
वल्गुना द्वारा रचकर सामन स्थापित किया हुआ सा प्रियजन
मातृवना नही देता है, यह बात नहीं है । अर्थात् सात्वना
दना ही है । परन्तु पत्नी के देगन्त हा जाने पर ससार जीण
जीण अरण्य की मंति हा जाना है और उसक पश्चात् हृदय
माना नृपाग्नि के डर में जलन लगता है ।

सप्तम अंक

॥ राम — पाप्मश्च पुनाति वर्धयति च श्रंयामि सेर्यं कथा
मङ्गल्या च मनोहरा च चगता मातरं गंगेय च ।
तमता पञ्चभार्यन्त्रभिनयैरन्यस्तरूपा ध्रुवा
शब्दप्रत्ययैः रये परिणता प्राज्ञस्य वाणीमिमाम् ॥७१

अन्वय — माता इव मता इव च जगत् मङ्गल्या च मनोहरा च सा
इव कथा पाप्मस्य पुनाति, श्रयति वर्धयति च । अभिनयैः
विन्यस्तरूपा शब्द ब्रह्मविद् प्राज्ञस्य कवे, परिणताम् इमा
ताम एता वाणी ध्रुवा परिभाषय तु ।

अनुवाद — माता के समान तथा गंगा के समान ससार की मङ्गल-
कारिणी तथा रमणीया मह चनाहर प्रसिद्ध रामायण रूप कथा
पापा से शुद्ध करती है और कल्याणों का बढ़ाती है । इस
सुप्रसिद्ध कथारूप वाणी का जो विद्वान् कवि भवभूति द्वारा
रूपान्तरित की गई हैं तथा जिसका रूप अभिनयो द्वारा
प्रदर्शित किया गया है, पण्डितगण चिन्तन करें ।

—

परिशिष्ट (अ)

भवभूति-स्तुति-पद्यावलि

- (१) स्पष्टभावरसा चिन्तः पादन्यासैः प्रवर्तिता ।
नाटकेषु नटस्त्रीव भारती भवभूतिना ॥
(घनपाल-तिलक मञ्जरी ५।३०)
- (२) भवभूतेर्शिखरणी निर्गलित तरंगिणी ।
रुधिरा घनसन्दर्भे या मयूरीव नृत्यति ॥
(क्षेमैन्द्र-मुवृति (तिलक) ३।१३)
- (३) भवभूते सम्बन्धाद्गुह्य भूरेव भारतीभाति ।
एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति प्राधा ॥
(गोवर्धनाचार्य-आर्याणस्तशती १।३३)
- (४) सुकषिद्वितय मन्ये निरिलेऽपि महीनले ।
भवभूतिः शुष्करचायं याल्मोकिस्त्रितयोऽनयोः ॥
(भोज प्रबन्ध ५।१९१)
- (५) उत्तरे रामचरिते भवभूति विशिष्यते । (विश्वनाथ)
- (६) रत्नवली पूर्वकमलं यदास्तामसीम भोग्यस्य वचोमयस्य ।
पयोधरस्येव हिमाद्रिजायाः परविभूपाभवभूतिरेव ॥
(अल्हण-स्तुतिमुक्तावलि)
- (७) भवभूतिमनाहत्य निर्धारमतिना मया ।
सुरारि पदचिन्तायामिदमाधोयते मनः ॥
(अल्हण-स्तुतिमुक्तावलि)
- (८) मान्यो जगत्यां भवभूतिरायौ सारस्यतेवत्सर्पनितार्थवाहः ।
वार्चं पताकामिवयस्य दृष्ट्वाजनः कर्वानामनुपृष्टमेति ॥
(उदयसुन्दरी चम्पू)
- (९) भवभूतिजलधिनिर्गतकाव्यामृतरसकणा इवस्फुरन्ति ।
यदा विशेषा अद्यापि विकटेषु कथानिवेशेषु ॥
(गौडवहो वाक्पतिराज)

(१०) काश्य भवभूतिरेवतनुते । (भजात)

(११) जडानामपि चैतन्यं भवभूतेरभूद् गिरा ।

प्राधाप्यरोक्षेत् पार्वत्या हसत स्मस्तनावपि ॥

(भजात)

(१२) अभूव वल्मीकि भव कवि पुरातत प्रपेदेभुविभट्टमेरुतामू ।

स्थित पुनर्यो भवभूतिरेषया स वर्तते सम्प्रतिराजशेपर

(बावराभाण-राज)

(१३) सुवन्धौ भक्तिर्न क इह रघुकारं न रमते

धतिर्नात्मी पुत्रे हसति हरिश्चन्द्रोऽपि हृदयम् ।

विशुद्धोक्ति शूर प्रकृतिमधुरा भारविगिरः

तथाप्यतरमोक्ष कमपि भवभूतिर्वितनुते ॥

(सद्गुक्ति कर्णामृत)

(१४) भव्या यदि विभूतिं त्वतात कामयसेतदा ।

भवभूतिपदे चित्तमविलम्ब निवेशय ॥

(भजात)

परिशिष्ट (व)

भवभूति के नाम पर संग्रह-ग्रंथों में उद्धृत पद्यः—

(१) निरवयानि पद्यानि यद्यनाद्यस्य का क्षति ।

मिथुनक क्षाविनिक्षिप्तः किमिधुनोरसो भवेत् ॥

(शारंगधर पद्धति)

(२) दैवाद्यद्यपि तुल्यऽभूद्भूतेशस्य परिग्रह ।

तथापि किं कपालानि तुला यति क्लान्तिधे ।

(शारंग० प०)

(३) अलिपटैरनुयातां सहृदय हृदयञ्जरं विलम्पन्तीम् ।

मृगमदपरिमल लहरीं समीर पामरपुरे किरधि ॥

(शारंगधर पद्धति)

(४) चूडापीडनिवद्धवासुनिष्णां फृत्कारानिर्यद्विपा—

ज्वालजृम्भितमत्स्यकच्छपवधू लोढेन्दुलेखामृत्तम् ।

अव्याद्व म्मरसूदनस्य मदनक्राड, कचाकपण—
श्च्योतन्नामसरित्सरोपगिरिजादृष्ट जटामगलम् ॥

39285

(सदृक्ति कर्णामृत)

- (५) गाढप्रन्थिप्रफुल्ललद्गल विफलफणापोठनिर्याद्विपाणि-
ज्वालानिप्तचन्द्रद्रवमृतरमप्रोपित प्रेतभाया ।
उज्जृम्भा वध्रुनेत्रात्तिममकृत्सूतत्पण्यालोकयन्त्य
पन्तुत्पा नागनालर्मायतशरशिर शृणुयो भोग्यस्य ॥

(सदृक्ति०)

- (६) वैकुण्ठस्य करम्भमङ्कनिहितं स्मृष्ट कपालं करे
प्रत्यग च त्रिभूषण विरचित नाकौरमा कीकृतै ।
भस्म स्थावरजगमम्य जगत शुभ्रतनौ त्रिध्रत
कल्पान्तेषु कपालिनो विजयते रौद्र कपालनतम् ॥

(सदृक्ति०)

- (७) का तपस्वी गतोऽवस्थामिति स्मेराविवस्तनौ ।
वन्दे गोरीधनाश्लेष भयभूति सिताननौ ॥

(सदृक्ति०)

- (८) शौर्यं शत्रुकुलभयावधि यशो ब्रह्माण्डपरव्यावधि
त्याग सप्तसमुद्रमुद्रित महीनिर्व्यानशानावधि ।
वीर्ययत्तु गिरा न तत्पथि ननु व्यक्तं हि तत्कर्मभि
सत्य ब्रह्मतपोनिधेर्भगवत किं किं न लोकोत्तरम् ॥

(सदृक्ति०)

- (९) नि ससार करघान विशीर्णध्रान्तदन्तरुधिरारणमूर्ति ।
केमरीव कटकादुदयाद्रेरङ्गुलीनहरिणो हरिणाङ्ग ॥

(सदृक्ति०)

- (१०) उपसि गुरुसमज लज्जमाना मगाक्षी
रतिरुतमनुक्तु' राजकीरे प्रवृत्ते ।

तिरयति शिशलीलानर्तनच्छायाल
प्रचलवलयमाला स्फालकोलाहलेन ॥ (सदुक्ति०)

- (११) भुगं घमोरम्भे पवनचलितं तापऽतये
पटच्छत्राकारं वहति गगनं धूलि पटलम् ।
अमो मन्दागणां दवदहन संदोहितधियो
न दौकन्ते पातुं क्षटिति मकरन्दं मधुलिहः ॥

(सदुक्ति कर्णामृत)

- (१२) लघति तृणकुटीरे चित्रकोणे यवानां
नवमल पलालस्तरे सोपधाने ।
परिहरति सुप्रं हालिकद्वन्द्वभारात्
स्तनकलशमहोष्मावद्धरेस्वस्तुपारः ॥ (सदुक्ति०)

- (१३) किञ्चन्द्रमा. प्रत्युपकारलिप्सया
करोति शोभि कुमुदावयोधनम् ।
स्वभाव एवोन्नतचतसा
परोपकारव्यसनं हि जीवितम् ॥

(रसिक जीवन यदाधरमट्ट)

परिशिष्ट (स)

सहायक ग्रन्थ सूची

[प्रस्तुत-पुस्तक के प्रणयन में जिनकी सामग्री का सहारा लिया गया है ।]

- १ इनसाइक्लोपीडिया आफ रिजीजन एन्ड इथिक्ल—एडिनबर्ग, १९५५
- २ ए हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर—डा० कृष्णभाचारी, मद्रास, १९३७
- ३ ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर—डा० मैकडानल—मुंशीराम मनोहरलाल—दिल्ली, १९५८
- ४ ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर—डा० दासगुप्ता और डा० एस० के० डे—कलकत्ता, १९४७

- ५ सस्कृत साहित्य का इतिहास—प्रो० बलदेव उपाध्याय, चौ० स० पु० बनारस १९५९
- ६ सस्कृत साहित्य की रूपरेखा—प्रो० चन्द्रशेखर पाण्डेय, बनारस
- ७ सस्कृत ड्रामा—डा० ए० बी० कीथ, आक्सफर्ड १९२४
- ८ हमारी नाट्यपरम्परा—श्रीकृष्णदास, प्रयाग १९५६
- ९ मालतीमाधवम्—नि० सा० प्रे०, बम्बई
- १० महावीर चरितम्—रामचन्द्र मिश्र, चौ० स० पु० बनारस
- ११ „ —डा० टोडरमल
- १२ उत्तर रामचरितम्—डा० पी० बी० कान्हे, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली
- १३ „ —आनन्द स्वल्प एम० ए० „ „
- १४ „ —प० तारणीश भा, रामनाथयण लाल इलाहाबाद
- १५ „ डा० बेलवलकर, हार्वर्डयूनीवर्सिटी प्रेस
- १६ „ प्रिन्सिपल शास्त्रदारुन्दनरे
- १७ „ —प० उपराम शर्मा, चौ० स० पु० बनारस
- १८ सस्कृत ड्रामा—प्रो० आर० बि० जागीरदार, धारवार
- १९ „ —प्रो० के० पी० कुलकर्णी
- २० दि थियेटर आफ हिन्दूज—विलसन, कलकत्ता १९५५
- २१ दि थियेटरिकल एज—भारतीय विद्याभवन बम्बई १९५४
- २२ दि इण्डियन थियेटर—डा० चन्द्रमान गुप्त—मोतीलाल बनारसीदास बनारस १९५४
- २३ कालिदास और भवभूति—द्विजेन्द्रलाल राम
- २४ भवभूति—हिज लाइफ एन्ड लिटरेचर—प्रो० एस० बि० बीडित, बेलगाव
- २५ मालतीमाधव. सार आणि विचार—लेले

